रवीन्द्र-साहित्य

बारहवाँ भाग

आखिरी कविता

'शेषेर कविता'

उपन्यास

मूल्य २।) सवा-दो रुपया

प्रकाशक :— धन्यकुमार जैन, पी-१५, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता
मुद्रक :— विजयलक्ष्मी प्रेस, ३५, बड़तल्ला, स्ट्रीट, कलकत्ता

रवीन्द्र-साहित्य

बारहवाँ भाग

अनुवादक

धन्यकुमार जैन

हिन्दी-ग्रन्थागार

पी-१५, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता - ७

हिन्दी-हिन्दुस्थानीमें

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरका

सम्पूर्ण साहित्य एकसाथ एक जगह

मिल सके इस उद्देश्यसे यह

ग्रन्थमाला प्रकाशित की जा रही है

आशा है

सुरुचिसम्पन्न पाठक-पाठिकाएँ और

पुस्तकालय इसे अवश्य अपनायेंगे

आखिरी कविता

'शेषेर कविता'

१

अमित-चरित

अमित राय बैरिस्टर है। उसकी 'राय' पदवीने अगरेजी ढाँचेमें जब 'रॉय' और 'रे' रूप धारण किया, तब उसकी 'श्री' तो गई मिट, किन्तु सख्या गई बढ़। यही कारण है कि उसने अपने नाममें असाधारणता लानेकी ख्वाहिशसे उसके अक्षर-विन्यास यानी हिज्जेमें ऐसा फेरफार कर डाला कि जिससे अगरेज मित्र और मित्रानियोंके मुहसे उसका उच्चारण बन गया—'अमिट राए'।

अमितके बाप थे दिग्विजयी बैरिस्टर। वे जिस मिकदारमें रुपया इकट्ठा कर गये थे, वह आगेकी तीन पीढ़ियोंके अधःपतनके लिए काफी था। मगर बापकी कमाईके खतरनाक खौफ और घातक सघातसे भी, बिना किसी विपत्तिके, अमित फिलहाल बाल-बाल बच गया।

कलकत्ता विश्वविद्यालयके बी० ए० के कोठेमें पाँव रखनेके पहले ही अमित ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटीमे भरती हो गया; और वहाँ परीक्षा देते-देते और न देते-देते उसके सात साल यों ही कट गये।

बुद्धि ज्यादा होनेसे उसने पढाई-लिखाई ज्यादा नहीं की ; फिर भी विद्यामे वह कम नहीं मालूम पड़ता । उसके बापने शुरुसे उससे किसी असाधारण बातकी आशा नहीं की । उनकी इच्छा तो यही थी कि उनके इकलौते बेटेके मनपर ऑक्सफोर्डका रग ऐसा पक्का होकर बैठ जाय कि देशमें आकर भी वह भट्टी* सह सके ।

अमितको मैं पसन्द करता हू । खासा लड़का है । मैं नवीन लेखक हूॅ । सख्यामें मेरे पाठक कम हैं । पर योग्यताकी दृष्टिसे उन सबमें श्रेष्ठ है अमित । मेरी रचनाओंकी चमक उसकी आँखोंमें खूब भाई है । उसकी धारणा है कि हमारे देशके साहित्यके बाजारमे जिन लोगोंका नाम है, उनके पास स्टाइल यानी शैली नहीं है । जीव-सृष्टिमें जैसे ऊँट है, इन लेखकोंकी रचना भी लगभग वैसी ही है । कधे और गरदन, सामने और पीछे, पीठ और पेट सब बेटगे हैं । चाल ढीली-ढाली और डगमग । बगला साहित्य जैसी खुरमुड फीकी मरुभूमिमें ही इसका चलन है । समालोचकोंसे पहले ही से कह रखना अच्छा है कि यह मत मेरा नहीं है ।

अमित कहता है, "फैशन है 'मुखोश'† और स्टाइल है 'मुखश्री' । उसकी रायमे जो लोग साहित्यके अमीर-उमराव दलके हैं, जो अपना मन रखकर चलते हैं, स्टाइल या शैली उन्होकी है । और जो अमला-फैला दलके हैं, अन्य पाँच जनोंका मन रखना जिनका रोजगार है, फैशन उनकी चीज है । वकिमचन्द्रकी स्टाइल उनके

---

* धोबीकी भट्टी । यानी भट्टी चढ़नेपर भी रग बना रहे ।

† 'मुखोश' = मुखकोश । कागज आदिका बना नकली चेहरा । मुहपोश । मुखश्री=मुहकी शोभा ।

लिखे हुए 'विषवृक्ष' में मौजूद है। बंकिमने उसमें अपनेका सुन्दरतासे निभा लिया है। और बंकिमी फैशनमें लिखित 'नसीरामके मनोमोहनके मोहनबगान' में? उसमें नसीरामने बंकिमको मिट्टी कर दिया है। 'बारोयारी'* तम्बूकी कनातके नीचे पेशेवर नाचवालियोंके दर्शन मिलते हैं, पर 'शुभ-दृष्टि' के मौकेपर तो वधूके मुह देखनेकी शुभ घड़ीमें बनारसी दुपट्टेका घूँघट चाहिए ही चाहिए। सो, कनात हुई फैशनकी चीज और बनारसी दुपट्टा स्टाइलकी,—खासका चेहरा खास रंगकी छायामें देखनेके लिए। अमित कहता है, बाजारके लोगोंके पैदल चलनेके रास्तेके बाहर हमलोगोंके पाँव कदम रखनेका साहस नहीं करते, इसीसे हमारे देशमें स्टाइलका इतना अनादर है। दक्षयज्ञकी कहानीमें इस बातकी पौराणिक व्याख्या मिलती है। इन्द्र-चन्द्र-वरुण स्वर्गके बिलकुल फैशन-दुरुस्त देवता हैं, याज्ञिक-इलाकेमे उन्हें निमंत्रण भी मिल जाया करता है। शिवके भी स्टाइल है, और वह इतनी आरिजिनल कि मंत्र घोंकू यजमान लोग उन्हे हव्य-कव्य देना कायदेके खिलाफ समझते हैं। ऑक्सफोर्डके किसी बी० ए० के मुँहसे ये सब बातें सुनना मुझे अच्छा लगता है। क्योंकि, मेरा विश्वास है कि मेरे लिखनेमें स्टाइल है, और इसीलिए मेरी सभी किताबें एक ही संस्करणमें कैवल्य या मुक्तिको प्राप्त हो जाती हैं, वे 'न पुनरावर्तन्ते'।

मेरे साले नवकृष्णको अमितकी ये सब बातें बिलकुल ही सहन नहीं होतीं। वह कहता है, "रक्खो तुम्हारा ऑक्सफोर्डका पास!" वह

---

* बारह यारी = बारोयारी। बाराह (बहुत) यार या मित्र मिल कर जिस पूजा-उत्सवको करते हैं, उसे 'बारोयारी' कहते हैं। इसमें महफिलके ढंगका नाटक भी खेला जाता है, जिसे 'यात्रा' कहते हैं।

था अंगरेजी साहित्यमें रोमहर्षक एम० ए०। उसे पढ़ना पड़ा है बहुत और समझना पड़ा है कम। उस दिन उसने मुझसे कहा, "अमित हमेशा जो छोटे लेखकोंको बड़ा बनाया करता है, सो बड़े लेखकोंको छोटा करनेके लिए। अवज्ञाका ढोल पीटना उसके शौकमें शामिल है। और, तुम्हें उसने बनाया है अपने ढोलका डंडा।"

दुःखकी बात है कि इस आलोचनाके स्थानपर मौजूद थीं मेरी स्त्री, स्वयं उसकी सहोदरा। परन्तु परम सन्तोषकी बात यह है कि मेरे सालेकी बात उन्हें जरा भी अच्छी नहीं लगी। मैं देखता हूं कि अमितके साथ ही उनकी रुचि ज्यादा मेल खाती है, हालां कि उन्होंने पढ़ा-सुना ज्यादा नहीं है; फिर भी स्त्रियोंकी स्वाभाविक बुद्धि आश्चर्यजनक होती है।

बहुधा मेरे मनमें भी खटका हो जाया करता है, जब देखता हूँ कि कितने ही नामी अंगरेज लेखकोंको भी नगण्य बतलाते हुए अमितकी छाती नहीं धड़कती। वे हैं, जिन्हें कहा जा सकता है बहूबाजारके* चलते लेखक, और बड़ेबाजारके छाप लगे हुए लेखक, प्रशंसा करनेके लिए जिनकी रचना पढ़ने-देखनेकी जरूरत ही नहीं होती, आंख मीचकर गुण-गान करनेसे ही पास मार्क मिल जाते हैं। अमितके लिए भी उनकी रचनाएँ पढ़ना-देखना अनावश्यक है, आंख मीचकर उनकी निन्दा करनेमें उसे कोई रुकावट या झिझक नहीं। असलमें, जो नामी लेखक हैं, वे उसके लिए बहुत ज्यादा सरकारी हैं, वर्धमान स्टेशनके वेटिंग-रूमकी तरह, और जिन्हें उसने

---

* बहूबाजार कलकत्ताका एक मुहल्ला है, जिसमें ऐसे पत्रों और पुस्तकोंका प्रकाशन होता है, जिनका दृष्टिकोण व्यापारमात्र है।

स्वय ढूढ निकाला है, उनपर उसका खास दखल है, जैसे स्पेशल ट्रेनका सेलून कमरा ।

अमितको स्टाइलका नशा ही है। सिर्फ साहित्य चुननेके काममें ही नहीं, बल्कि वेश-भूषा और व्यवहारमें भी । उसके चेहरेपर ही एक विशेष छन्द, एक खास ढग है,—पाँच जनोंमें वह कोई एक नहीं है, बल्कि वह है बिलकुल पचम। औरोंसे अलग उसपर दृष्टि पड़ती है । दाढ़ी-मूँछ सफाचट, मजा-घसा चिकना श्यामवर्ण परिपुष्ट चेहरा, स्फूर्ति-भरा भाव, आँखें चचल, हँसी चचल, हिलना-डुलना और चलना-फिरना चचल, किसी बातका जवाब देनेमे जरा भी देर नहीं होती ; और मन तो ऐसा एक तरहका चकमक-पत्थर है कि ठन-से जरा ठोंकते ही चिनगारियाँ छिटक पड़ती हैं। अकसर वह देशी कपड़े पहना करता है , क्योंकि उसके दलके लोग नहीं पहनते । धोती पहनता है बगैर किनारीकी सफेद, और खूब जतनसे चुनी हुई , क्योंकि उसकी-सी उमरमे इस तरहकी धोतीका चलन नहीं है। खूब ढीलाढाला कुड़ता पहनता है, जिसमे बायें कधेसे लेकर दाहनी तरफकी कमर तक बटन लगे रहते है, और उसकी आस्तीनोंके सामनेके हिस्से कोहनी तक दो भागोंमें विभक्त होते हैं , कमरको धोतीको घेरे हुए एक जरीदार चौड़ा कत्थई रगका फीता है, जिसके बाई तरफ लटका करती है वृन्दावनी छींटकी एक छोटी-सी थैली ; और उसमें रहती है उसकी घड़ी। पावोंमें सफेद चमड़ेपर लाल चमड़ेका काम किया-हुआ कटकी जूता । जब कभी बाहर जाता है तो एक तह की हुई किनारीदार मद्रासी चादर बायें कधेसे घुटने तक लटकती रहती है। मित्र-मडलीमें जब कहींसे उसे निमन्त्रण मिलता है, तो सिरपर

मुसलमानी ढगकी लखनवी पल्लेदार टोपी पहन लेता है, सफेदपर सफेद कामदार। इसे ठीक पोशाक नहीं कहा जा सकता, यह है उसकी एक तरहकी जोरकी हँसी। उसकी विलायती पोशाकका मर्म भी मेरी समझमें नही आता। जो समझते हैं वे कहते हैं—'कुछ ढीली-ढाली जरूर है, पर है, अगरेजीमें जिसे कहते हैं डिस्टिंगुइस्ड्'। अपनेको अपूर्व और अजीब दिखानेका शौक उसे नहीं है, मगर फैशनकी दिल्लगी उड़ानेका कौतुक उसमें काफीसे ज्यादा है। किसी तरह उमर मिलाकर यानी जन्मपत्रीके सुबूतके बलपर, जो युवक हैं उनके दर्शन तो राह-चलते मिल जाया करते हैं, पर अमितका दुर्लभ युवकत्व खालिस यौवनके ही जोरपर है; बिलकुल बेहिसाबी, उड़ाऊ, बाढ़की तरह बहा जा रहा है बाहरकी ओर, सब-कुछ लिये जा रहा है बहाये, हाथमें कुछ नहीं रखता।

इधर उसकी दो बहनें हैं, जिनके चालू नाम है सिसी और लिसी, जैसे नूतनबाजारमें* बिलकुल हालकी आई ताजा सब्जी, फैशनकी डालीमे आपाद-मस्तक जतनसे पैक किये हुए पहले नम्बरके खास पैकेट। ऊँचे खुरवाले जूते, खुली छातीकी लैसदार जाकेटकी खुली जगहपर कहरुबा मिश्रित मूँगेकी माला, और देहपर तिरछी भंगिमासे वसके लिपटी हुई साड़ी। ये खुटखुट करके द्रुत लयमे चलतीं, ऊँचे स्वरसे बोलती, और स्तर-स्तरसे उठाती रहती हैं सूक्ष्माग्र हँसी, मुँहको जरा तिरछा करके मुस्कराहटके साथ ऊँचे कटाक्षसे निहारती हैं, जानती हैं किसे

---

* कलकत्तेकी एक सब्जी-मडी।

कहते हैं सारगर्भ चितवन। गुलाबी रेशमका पंखा क्षण-क्षणमें गालोंके पास फुरफुराया करती हैं; और पुरुष मित्रकी कुरसीके हत्थेपर बैठकर पखेके आघातसे उनकी कृत्रिम स्पर्धापर कृत्रिम तर्जन प्रकट किया करती हैं।

अपने दलकी तरुणियोंके साथ अमितका व्यवहार देखकर उसके दलके पुरुषोंके मनमें ईर्षाका उदय होता है। निर्विशेष भावसे स्त्रियोंके प्रति अमितके औदासीन्य नहीं है, विशेष भावसे किसीके प्रति आसक्ति भी देखनेमें नहीं आती, और साथ ही साधारण भावसे कहींपर मधुर रसका अभाव भी नही होता। एक वाक्यमे कहा जाय तो कहना होगा कि औरतोंके सम्बन्धमे उसके आग्रह नहीं है, उत्साह है। अमित पार्टियोंमें भी जाता है, ताश भी खेलता है, अपनी तबीयतसे ही खेलमे हारता है। जिस स्त्रीका गला बेसुरा होता है, उससे दूसरी बार गानेके लिए जिद करता है। किसीको भद्दे रगके कपड़े पहने देखता है तो पूछता है कि यह कपड़ा किस दूकानपर मिलता है। किसी भी आलापिताके साथ बात करता है तो खास पक्षपतका स्वर लगाता है, और मजा यह कि सभी जानते हैं कि उसका पक्षपात बिलकुल निरपेक्ष है। जो आदमी बहुतसे देवताओंका पुजारी है, एकान्तमे सभी देवताओंकी वह सब देवताओंसे बड़ा कहकर स्तुति किया करता है। देवताओंके भी समझनेमें कुछ बाकी नहीं रहता, फिर भी वे खुश होते हैं। लड़कियोंकी माताओंकी आशा तो किसी भी तरह कम नहीं होती, लेकिन लड़कियोंने समझ लिया है कि अमित सुनहले रगकी दिगन्त-रेखा है, पकड़ाई दिये हुए ही है, फिर भी पकड़ाई देगा हरगिज नहीं। स्त्रियोंके विषयमें उसका मन

तर्क ही किया करता है, मीमांसापर नहीं पहुँचता। इसीलिए कहीं न-पहुँचनेके आलाप-परिचयके मार्गमें उसके इतना दुःसाहस है। इसीसे बड़ी आसानीसे वह सबके साथ मेल-जोल कर सकता है। पासमें दाह्य-वस्तु रहनेपर भी उसकी तरफकी आग्नेयता निरापद सुरक्षित है।

उस दिन पिकनिकमें, गंगा-किनारे जब उस पारकी घनी काली पुंजीभूत स्तब्धताके ऊपर चाँद निकला, तब उसके पास थी लिली गंगोली। उससे उसने मृदुस्वरमें कहा—"गंगाके उस पार वह नया चाँद है, और इस पार तुम हो और मैं हूँ, ऐसा समावेश अनन्त कालमें फिर कभी न होगा।"

पहले तो लिली गंगोलीका मन एक क्षणमें छलछला उठा था; मगर वह जानती थी कि उसकी इस बातमें जो भी कुछ सत्य है, वह है सिर्फ उसके कहनेके ढंगमें। उससे ज्यादा दावा करनेके मानी हैं बुद्बुदेके ऊपरकी वर्णच्छटापर दावा करना। इसीसे, अपनेको क्षण-भरकी बेहोशीसे अलग धकेलकर लिली हँस उठी, बोली—"अमिट, तुमने जो कहा वह इतना ज्यादा सच है कि न कहनेसे भी चल जाता। अभी-अभी यह जो एक मेंढक टप-से पानीमें कूद पड़ा, सो, यह भी तो अनन्तकालमें फिर कभी नहीं होनेका।"

अमित हँस दिया, बोला—"फर्क है, लिली, असीम फर्क है। आजकी संध्यामें उस मेंढकका कूदना एक गैरसिलसिलेकी फटी चीज है। मगर तुममें हममें, चाँदमें, गंगाकी धारामें, आकाशके तारोंमें एक सम्पूर्ण ऐक्यतानिक सृष्टि है,—बेटोफेनकी 'चन्द्रालोक-गीतिका' है। और मुझे तो मालूम होता है, विश्वकर्माके कारखानेमें एक पागल

स्वर्गीय सुनार है, उसने जैसे ही एक निर्दोष गोल सोनेके चक्रमें नीलमके साथ हीरा और हीराके साथ पन्ना लगाकर एक पहरकी अँगूठी बनाकर पूरी की, वैसे ही उसे समुद्रके पानीमें डाल दी; अब उसे ढूँढ़कर कोई पा नहीं सकता।"

"अच्छा ही हुआ, तुम्हारे लिए कोई फिकरकी बात नहीं रही, अमिट, विश्वकर्माके सुनारका बिल तुम्हे नहीं चुकाना पड़ेगा।"

"लेकिन लिली, करोड़ों-अरबों युगोंके बाद अगर कहीं दैवसे मगल ग्रहके लाल अरण्यकी छायामे, उसकी किसो-एक हजार-कोसी नहरके किनारे मेरी तुम्हारी आमने-सामने भेंट हो जाय, और अगर शकुन्तलाका वह मल्लाह बोयल मछलीका पेट चीरकर आजके इस अपूर्व सुनहले क्षणको हमारे सामने ला धरे, तब हम चौंककर एक दूसरेके मुँहकी तरफ देखेंगे, उसके बाद क्या होगा सोच देखो?"

लिलीने अमितको पखेसे मारकर कहा—"उसके बाद सुनहला क्षण अनमना होकर खसकके जा पड़ेगा समुद्रके पानीमें। फिर वह ढूँढे नहीं मिलेगा। पागल सुनारके गढे हुए ऐसे तुम्हारे कितने ही क्षण खिसकके गिर गये हैं, भूल गये हो, इसलिए उनका कोई हिसाब नहीं रहा।"

इतना कहकर लिली चटसे उठकर अपनी सखियोंके साथ जा मिली। बहुत-सी घटनाओंमें से इस एक घटनाका यहाँ नमूना दे दिया गया है।

अमितकी बहनें मिसी और लिसी उसे कहतीं—"अमी, तुम ब्याह क्यों नहीं करते?"

अमित कहता—"ब्याहके मामलेमें सबसे जरूरी चीज है पात्री, उसके बाद पात्र।"

सिसी कहती—'तुमने तो दंग कर दिया अमी, इतनी लड़कियाँ तो हैं!"

अमित कहता—'लड़कीसे ब्याह होता था उस प्राचीन कालमें, लक्षण मिलाकर। मैं चाहता हूँ पात्री, अपने परिचयसे ही जिसका परिचय हो, और जगतमे वह अद्वितीय हो।"

सिसी कहती—'तुम्हारे घर आते ही तुम होगे प्रथम, और वह होगी द्वितीय; और तुम्हारा परिचय ही होगा उसका परिचय।"

अमित कहता—"मैं मन-ही-मन जिस लड़कीकी व्यर्थ आशामें बरेखी कर रहा हूँ, वह बगैर-ठिकानेकी लड़की है। अकसर वह घर तक नहीं आ पाती। वह आकाशसे गिरता हुआ तारा है, जो हृदयका वायुमण्डल छूते-न-छूते ही जल उठता है, हवामे बिला जाता है, घरकी मिट्टी तक आ ही नहीं पाता।

सिसी कहती—"अर्थात् वह तुम्हारी बहनोंके समान कतई नहीं?"

अमित कहता—"अर्थात् वह घरमे आकर सिर्फ घरके आदमियोंकी सख्या नहीं बढानी।"

लिसी कहती—"अच्छा बहन सिसी, विमी बोस तो अमीके लिए पलक बिछाये राह देख रही है, इशारा करते ही दौड़ी चली आती है, वह इन्हे पसन्द क्यों नहीं? कहते हैं, उसमें कलचर नहीं है। क्यों, बहन, वह तो एम० ए० में 'बॉटनी' में फर्स्ट है। विद्याको ही तो कलचर कहते हैं।"

अमित कहता—"हाँ, कमल-हीरेके पत्थरको ही विद्या कहते हैं,

और उससे जो प्रकाश छिटक निकलता है उसे कहते हैं कलचर। पत्थरमें भार है, और प्रकाशमें दीप्ति।"

लिसी गुस्सेमें आकर कहती—"हुँह, बिमी बोसका आदर नहीं इनके मनमें, ये खुद ही क्या उसके योग्य हैं। तुम अगर बिमी बोससे ब्याह करनेके लिए पागल भी हो उठो, तो मैं उसे सावधान कर दूँगी कि वह तुम्हारी तरफ मुह फेरके ताके भी नहीं।"

अमित कहता—"पागल बगैर हुए बिमी बोसके साथ ब्याह करना चाहूँगा ही क्यों? उस समय मेरे ब्याहकी चिन्ता न करके योग्य चिकित्साकी ही चिन्ता करनी होगी।"

आत्मीय-स्वजनोंने तो अमितके ब्याहकी आशा छोड़ ही दी है। उन लोगोंने तय कर लिया है कि ब्याहकी जुम्मेदारी लेनेकी योग्यता उसमें नहीं है, इसीसे वह सिर्फ असम्भवका स्वप्न देखकर और उलटी बातें कहकर आदमीको चौंकाता फिरता है। उसका मन आलेयाका प्रकाश* है, मैदान या राहमे धोखा ही दिया करता है, उसे पकड़के घरमे नहीं लाया जा सकता।

इन दिनों अमित जहाँ-तहाँ हा-हा हू-हू करता फिरता है, 'फिरपो' की† दूकानमे जिसे-तिसे चाय पिलाया करता है, और जब तब मित्रोंको मोटरमे चढाकर अनावश्यक घुमा लाता है। यहाँ-वहाँसे चाहे जो चीज खरीदता और चाहे जिसको बाँट देता है; और अंगरेजी किताबें हाल-की-हाल खरीदकर चाहे जिस घरमे डाल आता है, फिर लाता ही नहीं।

---

* लूक, मिथ्याग्नि। मिथ्याशा-दीपिका।

† कलकत्तेका एक प्रसिद्ध अंगरेजी होटल।

उसकी बहनें जिस आदतकी वजहसे उससे बहुत नाराज रहती हैं, वह है उसकी उलटी बात कहना। सज्जनोंकी सभामें जो कुछ सर्वजन - अनुमोदित होगा उसके विपरीत वह कुछ-न-कुछ कह ही बैठेगा।

एक दिन जब कि कोई राष्ट्रतात्त्विक 'डिमांक्रेसी' (प्रजातन्त्र) के गुण वर्णन कर रहा था, तब अमित वहाँ कह बैठा—"विष्णुने जब सतीके मृत-शरीरको खण्ड-खण्ड कर डाला, तब देश-भरमें जहाँ-तहाँ उनके एक सौ से ज्यादा पीठ-स्थान बन गये। डिमांक्रैसीने आज जहाँ देखो वहाँ न-जाने कितनी टुकड़ियोंमे ऐरिस्टॉक्रैसी (कुलीनतन्त्र) की पूजा शुरू करा दी है, टूक-टूक ऐरिस्ट्रॉक्रेसियोंसे पृथिवी छा गई है। कोई पॉलिटिक्समें है, तो कोई साहित्यमें तो कोई समाजमें। उनमेंसे किसीमें भी गाम्भीर्य नहीं है, क्योंकि उन्हें अपनेपर विश्वास नहीं है।"

एक दिन स्त्रियोंपर पुरुषके आधिपत्यके अत्याचारोंके विषयमे कोई समाज-हितैषी अबला-बान्धव निन्दा कर रहा था पुरुषोंकी। अमित मुहसे सिगरेट अलग करके चटसे कह बैठा—"पुरुषोंके आधिपत्य छोड़ते ही स्त्रियाँ आधिपत्य शुरू कर देंगी, और दुर्बलका आधिपत्य बड़ा भयङ्कर होता है।"

सभी अबलाएँ और अबला-बान्धव गरम हो उठे, बोले—"इसके मानी क्या हुए?"

अमितने कहा—"जिस पक्षके अधिकारमें साँकल है, वह साँकलसे ही चिड़ियोंको बाँधता है, अर्थात् जोरसे। और जिसके पास साँकल नहीं है, वह बाधती हैं अफीम खिलाकर, अर्थात् मायासे। साँकल वाला बांधता जरूर है, पर भरमाता नहीं। अफीमवाली बाँधती भी

है और भरमाती भी। स्त्रियोंकी डिबिया अफीमसे भरपूर है, और प्रकृति-शैतानिन उन्हें मदद पहुँचाया करती है।"

एक दिन इन लोगोंकी बालीगजकी एक साहित्य-सभामे आलोचना का विषय था—रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी कविता। अमित अपने जीवनमें यही पहले-पहल सभापति होनेको राजी हुआ था, और गया था मन-ही-मन युद्ध-सज्जा पहनकर। एक पुराने जमाने-के-से बहुत ही भले आदमी वक्ता थे। रवीन्द्रनाथकी कविता कविता ही है, यही प्रमाणित करना उनका उद्देश्य था। दो-एक कालेजके अध्यापकोंके सिवा अधिकाश सभ्योंने यह बात स्वीकार कर ली कि प्रमाण एक तरहसे सन्तोषजनक है।

सभापतिने उठकर कहा—"कवि मात्रके लिए यह उचित है कि वह पाँच वर्षकी मियादके अन्दर कविता करे, पचीससे लेकर तीस तक। यह बात हम नहीं कहेंगे कि बादके कवियोंसे हम और-भी कुछ अच्छी चीज चाहते हैं, हम कहेंगे, और-कुछ चाहते हैं। फजली आम निबट जानेपर यह नहीं कहेंगे कि 'फजलीसे बढिया आम लाओ।' कहेंगे, 'नूतनबाजारसे बड़े-बड़े देखकर शरीफे तो ले आओ जी।' कच्चे हरे नारियलकी मियाद थोड़ी ही है, वह रसकी मियाद है, पक्के कड़े नारियलकी मियाद ज्यादा है, वह गरीकी मियाद है। कवि होते हैं क्षणजीवी, और फिलॉसॉफर (दार्शनिक) की उमरका कोई ठीक नहीं। × × × रवीन्द्रनाथके विरुद्ध सबसे बड़ी शिकायत यह है कि बुड्ढे वर्ड्सवर्थकी नकल करके हजरत बहुत ही बेजा तरीकेसे जिन्दा हैं। यमराज बत्ती बुझा देनेके लिए रह-रहकर फर्राश भेज रहे हैं, फिर भी हजरत खड़े-खड़े

कुरसीका हत्था थामे ही रह जाते हैं। वे अगर इज्जतके साथ स्वयं ही नहीं हट जाते, तो हमारा कर्त्तव्य है कि उनकी सभा छोड़कर हम दल बाँधके उठके चले आवें। उनके बाद जो आयेंगे, वे भी ताल ठोंकके गरजते हुए आयेंगे कि उनके राज्यका भी अन्त न होगा। अमरावती बँधी रहेगी मर्त्यमें, उन्हींके दरवाजेपर। कुछ समय तक भक्तगण माला-चन्दन चढ़ायेंगे, भर-पेट खिलायेंगे, साष्टाङ्ग प्रणाम करेंगे; उसके बाद आयेगा उन्हें वलि देनेका पुण्य-दिवस, भक्ति-बन्धनसे भक्तोंके परित्राणका शुभलग्न। अफ्रिकामें चतुष्पद देवताकी पूजा-पद्धति इसी तरहकी है। द्विपदी, त्रिपदी, चतुष्पदी, चतुर्दशपदी देवताओंकी पूजा भी इसी नियमसे होती है। पूजा जैसी चीजको एकरस बना देनेके समान अपवित्र अधार्मिकता और कुछ हो ही नहीं सकती। × × × अच्छा-लगनेका एक ऐवोल्यूशन (विकाश) है। पाँच साल पहलेका अच्छा-लगना पाँच साल बाद भी अगर एक ही जगह स्थिर खड़ा रहे, तो समझ लेना चाहिए कि बेचारेको मालूम नहीं पड़ा है कि वह मर चुका है। जरा-सा धक्का देते ही उसे इस बातका पता चल जायगा कि सेन्टिमेन्टल (भावुक) आत्मीयजनोंने उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया करनेमें देर कर दी थी, शायद यथार्थ उत्तराधिकारीको हमेशाके लिए वंचित रखनेके अभिप्रायसे। रवीन्द्रनाथके दलके इस अवैध षड्यन्त्रको पब्लिकके आगे प्रकट कर देनेकी मैंने प्रतिज्ञा की है।"

अपने मणिभूषणने चश्मेकी झलक डालकर प्रश्न किया—"यानी! आप साहित्यमें से लॉयल्टी (वफादारी) को उठा देना चाहते हैं?"

"बिलकुल! अबसे, यह कवि-प्रेसिडेण्टका शीघ्र-निःशेषित युग है। रवीन ठाकुरके विषयमें हमारा दूसरा वक्तव्य यह है कि उनकी

रचना-रेखा उन्हींके हस्ताक्षरोंके * समान है, गोल या तरंग-रेखा जैसी, गुलाब या नारी-मुख या चन्द्रमाके ढंगकी। वह प्रिमिटिव (प्रारम्भिक) है, प्रकृतिके हाथके हरूफोंकी मश्क या अभ्यासके समान। नये प्रेसिडेन्टसे हम चाहते हैं—कड़ी लाइनकी और खड़ी लाइनकी रचना, तीरके समान, बरछीके फलके समान, काँटेके समान। फूल सरीखी नहीं, बिजलीकी रेखाके समान, न्युरैल्जिया (बात शूल) की पीड़के समान, नुकीली, नुकीले गाँथिक गिर्जेके ढंगकी। मन्दिरके मण्डपके ढंगकी नहीं, बल्कि अगर जूट-मिल या सेक्रेटरियेट बिल्डिंगके ढाँचेकी हो, तो भी कोई नुकसान नहीं। × × × अबसे, फेंक दो सब मनको भरमानेवाली छन्दबद्धताको, मनको उससे छीन लेना होगा, जैसे रावण सीताको छीन ले गया था। मन अगर रोते-रोते आपत्ति करते-करते जाय, तो भी उसे जाना ही होगा। अतिवृद्ध जटायु उसे रोकने आयेगा, और उसीमे उसकी मृत्यु होगी। उसके बाद कुछ दिन बीतते ही किष्किन्ध्या जाग उठेगी, और कोई हनुमान सहसा कूदकर लंकामे आग लगाके मनको पहलेकी जगह लौटा लानेका इन्तजाम करेगा। तब फिर होगा टेनिसनके साथ हमारा पुनर्मिलन, बायरनके गलेसे लगकर आँसू बहायेंगे हम, और डिकेन्ससे कहेंगे कि माफ करो, मोहसे आरोग्य होनेके लिए तुम्हे गालियाँ दी थीं। × × × मुगल बादशाहोंके समयसे लेकर आज तक देशके तमाम मुग्ध राजगीर मिलकर अगर जहाँ-तहाँ भारत-भरमे सिर्फ गुम्बजदार पत्थरके बुद्बुद ही बनाते जाते, तो भद्रवंशका प्रत्येक आदमी जिस

* यहाँ क्षीणतासे मतलब है। कवीन्द्र रवीन्द्रके हस्ताक्षर जैसे सुगोल और सुन्दर हैं, वैसे क्षीण (पतली रेखा-युक्त) भी हैं।

दिन बीस सालकी उमर पार करता, उसी दिन वानप्रस्थ लेनेमे देर न करता। ताज-महलको अच्छा-लगानेकी खातिर ही ताज-महलका नशा छुड़ा देना जरूरी है।"

[यहींपर कह देना जरूरी है कि शब्दोंके स्रोत या वेगको सम्हाल न सकनेकी वजहसे सभाके रिपोर्टरका सर चकरा गया था, और उसने जो रिपोर्ट लिखी थी, वह अमितकी वक्तृतासे भी कहीं ज्यादा अबोध्य हो गई थी। उसीमेंसे जो भी कुछ टुकड़ोंका उद्धार किया जा सका, उन्हें हमने ऊपर सजाके रख दिया है।]

ताज-महलकी पुनरावृत्तिके प्रसगमें रवीन्द्रनाथके भक्त आरक्त मुखसे कह उठे—"अच्छी चीज जितनी ज्यादा हो, उतना ही अच्छा है।"

अमितने कहा—"ठीक इससे उलटी बात है। विधाताके राज्यमे अच्छी चीज थोड़ी होती है इसीसे तो वह अच्छी है; नहीं तो वह अपनी ही भीड़के धक्कोंसे हो जाती मामूली। × × × और जो सब कवि साठ-सत्तर वर्ष तक जिन्दा रहनेमें लज्जित नहीं होते, वे अपनेको सजा देते हैं अपनेको सस्ता बनाकर। अन्तमें अनुकरणोंका दल चारों तरफ व्यूह रचकर उन्हें मुँह चिढ़ाया करता है। उनकी रचनाओंका चरित्र बिगड़ जाता है, अपनी पहलेकी रचनाओंसे चोरी शुरु करके वे हो जाते हैं पूर्व-रचनाओंकी 'रिसीवर्स ऑफ् स्टोलन् प्रॉपर्टी'। ऐसी अवस्थामे, लोक-हितकी खातिर पाठकोंका कर्त्तव्य है कि इन सब अति-प्रवीण कवियोंको हरगिज जीने ही न देना। शारीरिक जीनेकी बात नहीं कह रहा मैं, मेरा मतलब है काव्यिक जीनेसे। बल्कि इनकी परमायु लेकर जीते रहें प्रवीण अध्यापक, प्रवीण पॉलिटिशन (राजनीतिज्ञ), प्रवीण समालोचक।"

उस दिनका एक वक्ता कह उठा—"क्या मैं जान सकता हूँ कि किसे आप प्रेसिडेन्ट बनाना चाहते हैं? उसका नाम तो बताइये?"

अमित चटसे कह बैठा—"निवारण चक्रवर्ती।"

सभाकी अनेक कुरसियोंसे एक आश्चर्य-भरी आवाज गूंज उठी—"निवारण चक्रवर्ती! है कौन वह?"

"आज जो आप लोगोंके मनमें फकत एक सवालका अकुर मात्र बना हुआ है, कल उसीमें से जवाबका पेड़ जाग उठेगा।"

"जाग उठनेके पहले कमसे कम उसकी करतूतका कोई नमूना तो दिखाइये?"

"तो सुनिये।"—कहते हुए अमितने जेबमें से एक पतली लम्बी कैम्बिसकी जिल्दवाली कापी निकाली; और पढ़ना शुरू कर दिया:—

लाया हूँ
नाम अपरिचितका धरणीमें,
परिचित जनताकी सरणीमें।
हूँ मैं आगन्तुक,
जन-गणेशका प्रचण्ड कौतुक।
खोलो द्वार,
सन्देश है विधाताका, सुनो सार।
महाकालेश्वरने
भेजे हैं दुर्लक्ष्य अक्षर,
है कोई दुःसाहसी यहाँ
बीड़ा मौतका उठाकर
दे जो उसका दुरूह उत्तर?

सुनाई कुछ भी नहीं।
खड़ी है सेना मूढ़ताकी, राह रोके।
क्रुद्ध होके
आ पड़ती छातीपर
व्यर्थ ही कड़क कर,
तरङ्गोंकी व्यर्थता नित्य जैसे
मरती सिर धुन-धुनके, शैल-तटपर,
आत्मघाती दम्भमें।

पुष्पमाला नहीं मेरे, सूना है अन्तस्तल,
न कवच है, न बाजू, न कुण्डल।
लिखा है शून्य ललाट-पटपर
गूढ़ विजय-टीका।
फटी गुदड़ी, दरिद्रका वेश।
करूंगा निःशेष
तुम्हारा भण्डार।
खोलो खोलो द्वार।

अकस्मात्
बढ़ाया मैंने हाथ
जो देना हो, दो साथ-साथ।
कांपती छाती तुम्हारी, कम्पित अर्गल,
सारी दुनिया तुम्हारी बन गई दलदल।

डर गया आर्त, चीख उठा
दिगन्त विदारके
दिशाएँ चीरके सारी,
"जा, लौट जा अभी,
रे दुर्दम्य, दुर्जन भिखारी,
तेरी कण्ठध्वनि, घूम-घूम
निशीथ निद्राके हृदयमें
भोंकती पैनी छुरी।"

लाओ, अस्त्र लाओ।
मेरे इस हृदयमें
झनझनाकर तुम घुसाओ।
मौतको मौत मारती है; मारने दो,
क्षय नहीं, अक्षय हैं ये प्राण
कर जाऊंगा दान।
बाँध लो, पकड़ लो,
साँकलोंसे जकड़ लो,
फिर भी टूटेंगी क्षणमें
मुक्तिकी शक्ति है मनमे।
चकित हो देखना
मुक्ति को पेखना
तुम्हारी मुक्ति भी तो
है मेरी ही मुक्तिमें।

लाओ शास्त्र लाओ।
करो वार मुझपर, आओ।
पण्डित पण्डित मिलके
सब जोरोंसे हिलके
करेंगे खण्डित दिव्य वाणी।
जानता हूं मानता हूं
पड़े हैं भरे तर्क-वाण
ठनेगी ठान शक्ति-प्रमाण।
होंगे सब टूक-टूक
कोई न होगा मूक,
कोषमें बातें पुरानी ही
खोल देंगी ढकी आंखें तब
देखोगे प्रकाश जब।

जलाओ आग अब।
आजकी जो है भलाई
हो भले ही कल बुराई,
होता है भस्म तो होने दो
रोती है दुनिया तो रोने दो,
दूर करो दुःख-शोक।
मेरी अग्नि-परिक्षासे
अपूर्व उस दीक्षासे
धन्य हो विश्व-लोक।

वाणी है दुर्बोध मेरी।
विरोधी बुद्धि पर
मुष्टि-प्रहार कर,
करेगी फिर भी चकित
दुर्बुद्धिपर कर बुद्धि अंकित।
उन्मत्त हैं मेरे छन्द
करते सभीसे द्वन्द
शान्ति-लुब्ध मुमुक्षुसे
भिक्षा - जीर्ण बुभुक्षुसे।
शुरूमें कुछ तर्क ठान,
एक-एक कर लेंगे मान,
माथेपर ठोंक हाथ
पर न कभी एकसाथ।
क्रोध - भय - क्षोभमें
और मानव-लोकमें
अपरिचितकी है विजय
अपरिचितोंका परिचय,—
जो थे कभी अपरिचित
हो गये वे सुपरिचित,
काल-वैसाखी आँधी-सी आती जब
धरती क्या आसमान, एकमेक होता सब,
लोग सब होते दंग
छिड़ता जब वज्र-जंग।

सूमपन छोड़ बादल
छिपके बरसाते जल
तोड़कर जंजीर तब
मुक्तकर देते सब
सारे जहानमे
आता जब तानमें।

रवि ठाकुरका दल उस रोज चुप रह गया। जाते वक्त धमकी दे गया, लिखके इसका जवाब देगा।

सारी सभाको बेवकूफ बनाकर मोटरमें बैठके अमित जब घर लौट रहा था, तब रास्तेमें सिसीने उससे कहा—"जरूर तुम एक बना-बनाया सावुत निवारण चक्रवर्ती पहले ही से गढ़कर अपनी जेबमें धर लाये थे, सिर्फ भले-आदमियोंको बेवकूफ बनानेके लिए।"

अमितने कहा—"अनागतको जो आदमी आगे ले आता है, उसीको कहते हैं अनागत-विधाता। मैं वही हूँ। निवारण चक्रवर्ती आज मर्त्यलोकमे उतर आया है, समझी, अब कोई उसे रोक नहीं सकता।"

सिसी अमितके लिए मन-ही-मन बड़ा-भारी गर्व अनुभव किया करती है। उसने कहा—"अच्छा अमी, तुम क्या सबेरे उठतेके साथ ही उस दिनके लिए अपनी तमाम पैनाकर-कही-जानेवाली बातें तैयार करके रख लिया करते हो?"

अमितने कहा—"हो सकनेवाली किसी भी बातके लिए हर वक्त तैयार रहनेका नाम ही सभ्यता है। बर्वरता दुनियामे सभी विषयोंमे अप्रस्तुत रहती है। यह बात भी मेरी नोट बुकमे लिखी है।"

"मगर मुश्किल तो यह है कि तुम्हारे पास 'अपनी राय' नामकी कोई चीज ही नहीं। जब जैसी बात खूब अच्छी सुनाई दे, वही तुम कह डालते हो।'

"मेरा मन दर्पण है, अपने बँधे हुए मतोंसे ही अगर ऊपरसे नीचे तक हमेशाके लिए उसे लीपकर रख देता, तो उसपर प्रत्येक गुजरनेवाले क्षणका प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता।"

सिसीने कहा—"अभी, प्रतिबिम्ब लिये-लिये ही तुम्हारी जिन्दगी कट जायगी।"

२

संघात

अमितने चुन-चुनाकर आखिर शिलाग पहाड़पर जाना ही तय किया, और गया भी वहीं। कारण, वहाँ उसकी मडलीका और कोई नहीं जाता। दूसरा कारण यह भी है कि वहाँ लड़कीवालोंकी बाढ उतनी जोरदार नहीं। अमितके हृदयपर जो देवता रात-दिन तीर चलाते रहते हैं उनका आना-जाना फैशनेबुल मुहल्लोंमे ही ज्यादा होता है। देशके पहाड़ या पहाड़ियोंपर जितनी भी विलासिताकी बस्तियाँ हैं, उनमे से इन लोगोके लिए चाँदमारी करनेकी सबसे तग जगह है शिलाग।

अमितकी बहनोंने अपना सिर झकझोरते हुए कहा—"जाते हो तो अकेले चले जाओ, हममें से कोई नहीं जानेकी।"

बायें हाथमे हाल-फैशनकी नाटी छतरी, दाहने हाथमें टेनिस-बैट और बदनपर नकली फारसी दुशालेका 'क्लोक' (लबादा) पहनकर दोनों

बहनें चल दीं दारजिलिग। बिमी बोस वहाँ पहले ही से जा डटी थी। जब बगैर भाईके सिर्फ बहनोंका ही वहाँ समागम हुआ, तो चारों तरफ देखकर बिमीने अविष्कार किया कि दार्जिलिंगमें जनता तो है, पर आदमी नहीं।

अमित प्रायः सबसे कह गया था कि वह शिलाग जा रहा है एकान्तवास करने। पर दो दिन बीतते-न-बीतते वह समझ गया कि जनता नहीं होती तो एकान्तवासका जायका ही मारा जाता। कैमेरा हाथमें लिये दृश्य देखते-फिरनेका शौक उसे नहीं है। उसका कहना है कि 'मैं विलायती टूरिस्ट या देशी भ्रमण-यात्री नहीं हूँ; मनसे चाखके खानेकी आदत है मेरी, आँखोंसे निगलकर खानेकी हवस मैं कतई नहीं रखता।'

कुछ दिन तो उसके बीत गये पहाड़की ढालपर देवदारु-वृक्षोंकी छायाके नीचे, किताबें पढ़ते-पढ़ते। कहानियोंकी पुस्तक उसने छुई तक नहीं; क्योंकि छुट्टियोंमें कहानियोंकी किताब पढ़ना सर्वसाधारण लोगोंका कायदा है। वह पढ़ने लगा सुनीति चाटुर्ज्याका लिखा हुआ ग्रन्थ 'बंगला भाषाका शब्दताव', लेखकके साथ उसका मतभेद होगा इस तीव्र आशाको मनमे लिये हुए। पर यहाँके वन-जगल और पहाड़-पहाड़ियोंके दृश्य उसके शब्द-तत्त्वज्ञान और आलस्य-जड़ताकी सँधिमेंसे सहसा सुन्दर दिखाई दे जाते; और साथ ही मनपर वे पूरी तौरसे घने होकर छा नहीं जाते। मानो वे किसी रागिनीके एकरस अलाप जैसे हों, जिसमें न स्थायी है, न ताल है, न शम है। अर्थात् उसमें 'अनेक' तो हैं, पर 'एक' नहीं, इसीसे ढीली चीज बिखर जाती है, इकट्ठी नहीं होती। अमित अपने निखिलके अन्दर

एकके अभावमें बार-बार अपनी भीतरी चचलतासे विक्षिप्त हो जाता है ; यह दुःख उसका जैसे यहाँ है, वैसा ही शहरमें। परन्तु शहरकी उस चचलताको वह नाना प्रकारसे क्षय कर डालता है , और यहाँ तो चाचल्य ही स्थायी होकर उसमे जमने लगता है, जैसे झरना रुकावट पाकर तालाब बनके बैठ जाता है। इसीसे जब वह सोच रहा था कि पहाड़की ढालसे उतरकर सिलहट-सिलचरके भीतरसे जहाँ जी चाहे पैदल भाग खड़ा होगा, ठीक उसी समय आषाढ़ आ पहुँचा पहाड़ों और वनोंमें, अपनी सजल घनच्छायाकी चादर धरतीपर लुटाता हुआ। खबर मिली कि चेरापुजीके पर्वत शिखरने नव-वर्षाके मेघोंके सामूहिक आक्रमणको अपनी छातीपर झेल लिया है ; और घन वर्षण अब निर्झरिणियोंको उन्मत्त करके कूल-हीन तट-हीन कर देगा। उसने तय किया कि ऐसे समयमें तो कुछ दिनके लिए चेरापुजीके डाकबगलेमे जाकर वह ऐसा मेघदूत जमा देगा कि जिसकी अदृश्य अलकापुरीकी नायिका अशरीरी बिजली-सी होगी, जो उसके चित्त-आकाशको क्षण-क्षणमें चमकाया करेगी ; न अपना नाम लिखेगी, न कोई पता-ठिकाना छोड़ जायेगी।

उस दिन उसने अपने पाँवोंमे हाइलैण्डरी मोटे , ऊनी मोजे चढ़ाये, मोटे सुखतलवाले मजबूत जूते पहने, खाकी नर्फोक कुड़ता पहना, घुटनों तक ओछा आफ-पैण्ट डाट लिया और सिरपर सोलेका टोप दे मारा। देखनेमें अवनीन्द्र ठाकुर द्वारा अङ्कित यक्ष जैसा नहीं हुआ , बल्कि ऐसा मालूम देने लगा जैसे सड़ककी जाँच करने कोई डिस्ट्रिक्ट इजीनियर निकल पड़ा हो। लेकिन, जेबमें थीं पाँच-सातेक पतले एडिशनकी नाना भाषाओंको काव्यकी पुस्तकें।

टेढी-नेढी पतली सड़क है। दाहिनी तरफ है जंगलसे ढकी खाई। इस सड़कका अन्तिम लक्ष्य है अमितका मकान, जिसमें वह ठहरा हुआ है। वहाँ यात्रियोंके आनेकी सम्भावना कतई नहीं; इसलिए वह आवाज बगैर किये ही असावधानीके साथ गाड़ी हाँके चला जा रहा था। ठीक उसी समय वह सोच रहा था, आधुनिक कालमें दूर देशकी प्रेयसीके लिए मोटर-दूत ही सबसे अच्छा और प्रशस्त है; उसमे 'धूमज्योतिःसलिलमरुता सन्निवेशः' काफी और ठीक नाप-तौलमें है, और, चातकके हाथमें एक पाती दे देनेसे फिर तो कुछ अस्पष्ट रह ही नहीं जाता। उसने तय कर लिया कि अगले साल आषाढके प्रथम दिवसमें ही मेघदूत-वर्णित मार्गसे ही वह मोटरपर यात्रा करेगा। हो सकता है कि अदृष्टने उसकी बाट देखते हुए 'देहलीदत्तपुष्पा' जिस पथिक-वधूको अब तक बिठा रखा है, वह अवन्तिका हो चाहे मालविका, या हिमालयकी कोई देवदारु-वन-चारिणी ही हो, उसे शायद किसी एक अचिन्तनीय मौकेसे वह दिखाई दे भी सकती है। इतनेमें सहसा आगेके एक मोड़के पास पहुचते ही उसने देखा कि एक और गाड़ी ऊपर चढी आ रही है। गाड़ीके लिए एक किनारेसे चलनेको जगह नहीं थी। ब्रेक कसते-कसते गाड़ी जा पड़ी उसके ऊपर। दोनोंको आघात पहुँचा, पर अपघात किसीका नहीं हुआ। दूसरी गाड़ी जरा-सी लुढककर पहाड़से जा लगी और वहीं अटककर रह गई।

एक तरुणी गाड़ीसे उतरकर सड़कपर खड़ी हो गई। मृत्युकी आशकाका ताजा काला पट अभी तक उसके पीछे मौजूद था, मानो उसीपर वह खिल उठी, विद्युत्रेखासे अङ्कित एक साफ-सुथरी

तसवीर-सी, चारों तरफके सब-कुछसे बिलकुल अलग, निराली। मन्दार पर्वतके प्रकम्पित और फेनिल समुद्रमेंसे मानो अभी-अभी उठके आई हो स्वयं लक्ष्मी, सम्पूर्ण आन्दोलनोंके ऊपर, और महासागरकी छाती मानो अभी तक फूल-फूलकर कांप रही हो। दुर्लभ अवसरमें ऐन मौकेपर अमितने उसे देखा। किसी ड्राइंग-रूममें यह बाला और पाँच-जनोंके बीच अपने परिपूर्ण आत्म-स्वरूपमें नहीं दिखाई देती। दुनियामें देखने लायक आदमी तो शायद मिल भी जाता है, पर उसे देखने लायक ठीक वक्त और ठीक जगह नहीं मिलती।

वह पतली किनारीदार सफेद अलवानकी साड़ी और उसी अलवानकी जाकेट पहने थी, पाँवोंमें थी सफेद चमड़ेकी देशी ढाँचेकी जूतियाँ। देह छरछरी और लम्बी, रंग चिकना सांवला, कमान-सी खिची हुई आँखें पलकोंकी घनी बरुनियोंकी छायासे निविड़ और स्निग्ध, प्रशस्त ललाटको बगैर रोके पीछेकी तरफ खींचकर कसके बँधे हुए बाल, और ठोड़ीको घेरे हुए सुकुमार मुखड़ेकी गढ़न अध-पके फलके समान रमणीय। जाकिटकी बाहें कलाई तक लम्बी, और हाथोंमें एक-एक पतला प्लेन बाला। ब्रोचका बन्धन-हीन कँधेका पल्ला माथेपर पहुचकर कटकी-कामदार चाँदीके काँटेसे जूड़ेके साथ जा बँधा था।

अमितने टोपी खोलकर गाड़ीमें रख दी, और उसके सामने चुपचाप ऐसे जा खड़ा हुआ जैसे मिलनेवाली सजाका इन्तजार कर रहा हो। इसे देखकर उस लड़कीको शायद दया आ गई, और शायद कुछ कुतूहल भी हुआ। अमितने मुलायम स्वरमें कहा—

"कसूर हो गया मुझसे।"

लड़कीने हँसकर जवाब दिया—"कसूर नहीं, गलती है। और उस गलतीकी शुरूआत मुझ ही से हुई है।"

लड़कीका कंठस्वर झरनेके मूलस्रोतके उत्साह और फुलावके समान परिपूर्ण और सुडौल था, कम उमरके बालकके गलेकी तरह मुलायम और प्रशस्त। उस दिन घर लौटकर अमित बहुत देर तक सोचता रहा था कि उसके स्वरमें जो एक स्वाद है, स्पर्श है, उसका वर्णन कैसे किया जाय? नोटबुक खोलकर उसने लिखा था—"मानो वह अम्बरी-तम्बाकूका हलका धुआँ हो, पानीके भीतरसे घूमता हुआ आ रहा हो, उसमें निकोटिनकी उग्रता नहीं, बल्कि गुलाबजलकी स्निग्ध सुगन्ध है।"

लड़कीने अपनी त्रुटिकी व्याख्या करते हुए कहा—"एक मित्रके आनेकी खबर पाकर उन्हें ढूँढने निकली थी। इस रास्तेसे कुछ ऊपर चढ चुकनेके बाद, सोफरने कहा कि यह रास्ता नहीं हो सकता। मगर तब, आखिर तक बगैर चढे कोई उपाय ही न था। इसीसे ऊपर आ रही थी। इतनेमें ऊपरवालेका धक्का खाना पड़ा।"

अमितने कहा—"ऊपरवालेके ऊपर भी ऊपरवाला है, एक अत्यन्त कुश्री कुटिल ग्रह; यह उसीकी करतूत है।"

दूसरे पक्षके ड्राइवरने कहा—"नुकसान ज्यादा नहीं हुआ, लेकिन गाड़ी बनकर तैयार होनेमें देर लगेगी।"

अमितने कहा—'मेरी अपराधिनी गाड़ीको अगर क्षमा कर दें, तो यह, आप जहाँ आज्ञा देंगी वहीं पहुँचा दे सकती है?'

"खैर, इसकी जरूरत नहीं होगी, पहाड़पर पैदल चलनेकी मुझे आदत है।"

"जरूरत मुझ ही को है; मुझे माफ कर दिया, इसका सबूत?"

लड़की कुछ दुविधामें पड़कर चुप रह गई। अमितने कहा—"मेरी तरफसे और-भी एक बात है। मैं गाड़ी हांकता हूँ, यह कोई खास महत्त्वका काम नहीं, इस गाड़ीमें चढ़कर पॉस्टैरिटी तक नहीं पहुँचा जा सकता, आगेकी पीढ़ियों तक पहुँचनेका यह रास्ता नहीं। फिर भी, शुरू-शुरूमें यही एकमात्र परिचय पाया है आपने। और सो भी, ऐसी तकदीर मेरी कि उसमें भी गलती! उपसंहारमें अब इतना तो दिखा देने दीजिये कि संसारमें कम-से-कम आपके सौफरसे मैं अयोग्य नहीं हूँ?"

अपरिचितके साथ प्रथम परिचयमें अज्ञात विपत्तिकी आशंकासे स्त्रियाँ अपने सङ्कोचको नहीं हटाना चाहतीं। पर विपत्तिके एक धक्केसे उपक्रमणिकाकी लम्बी मेड़का बहुत-सा हिस्सा एकाएक टूट जाता है। यहाँ भी वही हुआ, अचानक किसी दैवने सुनसान पहाड़ी रास्तेके बीच एकाएक इन्हें खड़ा करके, दोनोंके मनमें देख-भालकी गाँठ बांध दी, जरा भी सब्र नहीं किया। आकस्मिकके विद्युत्-प्रकाशमें इस तरह जो-कुछ देखनेमें आया, अकसर बीच-बीचमें वह रातको जाग उठनेपर अन्धकार-पटपर दिखाई दे जाता है। उसकी चेतनापर आजकी घटनाकी गहरी छाप पड़ गई, जैसे नील आकाशपर सृष्टिके किसी एक प्रचण्ड धक्केसे सूर्य-नक्षत्रकी आगकी जली छाप लग जाती है।

मुंहसे कुछ न बोलकर वह तपाकसे गाड़ीमें बैठ गई। उसके कहे मुताबिक गाड़ी यथासमय यथास्थान जा पहुँची।

तरुणीने गाड़ीसे उतरकर कहा—"कल अगर आपको समय मिले, तो एक बार यहाँ आइयेगा। मैं अपनी मालिकिन-मासे आपकी जान-पहचान करा दूँगी।"

अमितके मनमें आई कि कह दे—"मेरे पास समयकी कमी नहीं है; अभी तुरन्त चल सकता हूँ।" पर सकोचसे वह कह नहीं सका।

घर लौटकर, अपनी नोटबुक उठाकर वह लिखने लगा—"रास्तेने सहसा यह कैसा पागलपन कर डाला! दोनोंको दो जगहसे तोड़ लाकर, आजसे शायद दोनोंको एक ही रास्तेसे चालान कर दिया। ऐस्ट्रॉनॉमरने गलत कहा है। अज्ञात आकाशसे चाँद आ पड़ा था पृथ्वीके वातायनमें; लग गया धक्का उनकी मोटरोंमें, मौतकी उस ताड़नाके बादसे, युग-युगमें दोनों एक ही साथ चल रहे हैं। इसका प्रकाश उसके मुँहपर पड़ता है और उसका प्रकाश इसके मुँहपर। चलनेका बन्धन अब टूटता ही नहीं। मनके भीतरसे कोई कह रहा है—"हमारा युगल-चलन शुरू हो गया। हम चलनेके सूतमें, क्षण-क्षणमें पड़े-पाये उज्ज्वल निमेषोंकी माला गूँथा करेंगे। अब बँधी तनखाकी बँधी हुई खुराकीपर भाग्यकी चौखटपर पड़ा नहीं रहा जा सकता। हमारा लेन-देन सभी-कुछ सहसा हुआ करेगा।"

बाहर वर्षा हो रही है। बरामदेमें बार-बार चहलकदमी करते-करते अमित मन-ही-मन बोल उठा—'कहाँ हो कवि निवारण! आओ, मेरे सर चढकर बोलो। मुझे वाणी दो, वाणी!' और चटसे उसने अपनी पतली-सी कापी निकाल ली। निवारण चक्रवर्ती बोलता गया :—

बिना-बँधी गाँठने बाँध दी राह आज,
चलती हवाके हम
राहगीर दोनोंने
दुनियासे न्यारा कहीं अन्त ही बसाया राज।
धूलके दुलारे क्षण, कुंकुम गुलाल डाल,
मदसे उन्मत्त मन, रगते कपोल लाल।
वर्षाके बादलोंमें उड़ाके दुपट्टा आज,
दिगङ्गना नाच रही, पहनके रंगीन साज।
लगते ही चकाचौंध
तुरत गया चित्त औंध।

कुंज कनक-चम्पाके हैं नहीं हमारे यहाँ,
बिछे वन-वीथिकामें बकुल-फूल जहाँ-तहाँ।
नाम-हीन फूल एक आया किसी रातमें
लाया था सुगन्ध वह, फैला गया गातमें
आई बेला प्रभातकी
हँसी हँस अनादरकी
इतराई इतनी वह, अरुण मेघोंको कहती तुच्छ।
उद्धत शाखा-शिखरोंपर
देखो वह रोडोडेण्ड्रन-गुच्छ।

धन-रत्नका संचय नहीं,
घरके लाड़-प्यारका जरा भी परिचय नहीं।

पासके उस पेड़पर चिड़िया नचाती पूछ है,
बाँधता कोई नहीं, हालाँ नदारत मूछ है।
डैना, पसारे प्रियतमा
आकाशमें है उड़ रही
मुक्तिप्रिया है गा रहो, राग मुक्त सुना रही।

अब एक बार पीछेकी ओर भी देख लेना जरूरी है। पिछली बातें पूरी कर ली जायँ तो सामने बढनेमें कोई रुकावट न आयेगी।

३

पूर्व-भूमिका

खासकर बङ्गालमें, अगरेजी शिक्षाके पहले दौरमे, चण्डीमंडपकी पुरानी आब-हवाके साथ स्कूल-कालेजकी नई हवाकी गरमीका जो जबरदस्त वैषम्य और संघर्ष दिखाई दिया, उसमें समाज-विद्रोहका एक तूफ़ान-सा उठ खड़ा हुआ; और उसके चगुलमें फँसना पड़ा ज्ञानदाशकरको। वे पुराने जमानेके ही आदमी थे, पर उनके मामलेकी तारीख सहसा फिसल कर आ पड़ी नये जमानेके पास। वे अपनी मियादसे पहले ही पैदा हो गये। बुद्धिमें बातचीतमें व्यवहारमे वे अपनी उमरके लोगोंसे कहीं आगे निकल आये थे। समुद्रकी लहरोंसे खेलनेवाले पक्षीकी तरह लोकनिन्दाके थपेड़े छाती खोलकर सह लेनेमें ही उन्हें आनन्द मिलता था।

इस तरहके सभी बाबाओके नाती-पोते जब इस तरहकी तारीख पड़नेके खिलाफ आवाज उठाकर उसके सशोधनकी कोशिश करते हैं, तो वे एक ही दौड़में पत्राके एकदम उलटी तरफके टर्मिनसमें

पहुच जाते हैं। यहाँ भी वही बात हुई। ज्ञानदाशंकरके नाती वरदाशंकर अपने पिताकी मृत्युके बाद, युगके हिसाबसे, करीब-करीब बाप-दादोंके आदिम पूर्वपुरुष हो उठे। वे मनसादेवीके भी हाथ जोड़ते और शीतलादेवीको भी माता कहकर शान्त रखना चाहते। यहाँ तक कि उन्होंने ताबीज धोकर पानी पीना शुरू कर दिया; एक हजार आठ बार 'दुर्गा' नाम लिखते-लिखते लगभग एक-तिहाई दिन बीत जाता। उनके इलाकेमें जो वैश्य-दल अपना द्विजत्व प्रमाणित करनेके लिए सिर हिलाकर उठके खड़ा हुआ था, उसे भी भीतर - बाहर सभी तरहसे विचलित कर दिया गया, और हिन्दुत्वकी रक्षाके उपायोंको विज्ञानके स्पर्श-दोषसे बचानेके लिए भाटपाड़ाके महापण्डितोंकी सहायतासे असख्य ऋषिवाक्य पम्फलेटके रूपमें छपाकर, उन्हें आधुनिक बुद्धिकी खोपड़ीपर विनामूल्य बरसानेमें भी कजूसी नहीं की गई। बहुत ही थोड़े समयके अन्दर उन्होंने क्रिया-कर्म, जप-तप, आसन-आचमन, स्नान-ध्यान, धूप-धूना और गऊ-ब्राह्मणोंकी सेवासे शुद्धाचारका खूब मजबूत और निश्छिद्र किला अपने चारों तरफ खड़ा कर लिया। अन्तमे गो-दान स्वर्ण-दान भूमि-दान और कन्या-दाय पितृ-दाय मातृ-दाय दूरीकरण आदिके बदलेमे असख्य ब्राह्मणोंके अशेष आशीर्वाद ग्रहण करके जब वे लोकान्तरको सिधारे, तब उनकी उमर थी सिर्फ सत्ताईस सालकी।

वरदाशङ्करकी स्त्री थीं योगमाया, जो कि उन्हींके पिताके परममित्र, एकसाथ एक ही कालेजमें पढे-हुए और एकसाथ एक ही होटलमें चॉप-कटलेट खाये-हुए रामलोचन बनर्जीकी कन्या थीं। जब यह ब्याह हुआ था, तब योगमायाके पितृकुलके साथ पतिकुलका वर्णभेद नहीं था। अब तो उनके मायकेकी लड़कियाँ पढती-लिखती भी हैं,

बाहर भी निकलती हैं ; यहाँ तक कि उनमेंसे किसी-किसीने मासिकपत्रमें सचित्र भ्रमण-वृत्तान्त भी लिखा है। ऐसे घरानेकी लड़कीके शुद्धाचरण और धार्मिक संस्कारोंमें कहीं कोई अनुस्वार-विसर्गकी भी भूल-चूक न रह जाय, इसकी देखभालमें लग गये स्वयं उनके पतिदेव वरदाशंकर। सनातन सीमान्त-रक्षाकी नीतिके अटल शासनसे योगमायाकी गतिविधि विविध पासपोर्ट-प्रणालियों द्वारा नियन्त्रित की जाने लगी। उनका घूंघट उतर आया आँखों तक ; मन तक भी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। देवी सरस्वती जब किसी अवकाशमे इनके अन्तःपुरमें प्रवेश करतीं, तब ड्योढ़ीके पहरेपर उन्हे भी नगाभोरी दे आनी पड़ती थी। उनके हाथकी अंगरेजी किताबें बाहर ही जब्त हो जाती थीं। बंकिम-युग या उनके बादका साहित्य अगर फाटकपर पकड़ जाता, तो वह देहली पार नहीं कर सकता था। योगवाशिष्ठ रामायण के बंगला अनुवादोंकी बढ़ियासे बढ़िया जिल्दें योगमायाकी आलमारीमे पड़ी-पड़ी बहुत दिनोंसे प्रतीक्षा कर रही हैं। अवसर-विनोदनके लिए कभी-न-कभी उस विषयकी वे आलोचना करेंगी, ऐसा एक आग्रह इस घरके अधिकारियोंके मनमें अन्त तक बना ही रहा। पर उस पौराणिक युगके लोहेके सन्दूकके अन्दर अपनेको सेफ-डिपाॅजिटकी तरह खूब हिफाजतके साथ रख देना योगमायाके लिए आसान नहीं था, फिर भी, अपने विद्रोही मनको उन्होंने भरसक अपने काबूमे ही रखा। इस मानसिक घिरावके बीच उनके लिए एकमात्र शरण थे प० दीनशरण वेदान्तरत्न, इस घरानेके सभा-पण्डित। योगमायाकी स्वाभाविक स्वच्छ बुद्धि उन्हे बहुत ही अच्छी लगी थी। वे स्पष्ट ही कहा करते थे, "बेटी, यह सब क्रिया-कर्मका जंजाल तुम्हारे लिए नहीं है।

जो लोग मूढ़ हैं, वे सिर्फ अपने-आपको ही ठगते हों, सो बात नहीं, बल्कि दुनिया-भरका सभी-कुछ उन्हें ठगता रहता है। तुम क्या समझती हो कि हम इन शास्त्रोंकी बातोंपर पूरा विश्वास करते हैं? देखती नहीं तुम, विधान देते समय हम आवश्यकता समझकर शास्त्र-विधानको व्याकरणके दांव-पेचसे उलटने-पलटनेमें कोई खास दुःख अनुभव नहीं करते? इसके मानी यह हुए कि मनके भीतर हम बन्धन नहीं मानते, बाहरसे हमें मूढ़ बनना पड़ता है, मूढ़ोंकी खातिर। तुम खुद जब कि अपनेको भुलावेमें नहीं डालना चाहती, तो तुम्हे भुलावा देनेका काम हमसे कैसे हो सकता है? जब कभी तुम्हारी इच्छा हो समझने-जाननेकी, तब मुझे बुलवा लेना बेटी। मैं जिसे सत्य समझता या जानता हूँ, वही तुम्हें शास्त्रमें से सुना जाऊँगा।"

किसी-किसी दिन वे खुद इनके घर आकर योगमायाको कभी 'गीता' और कभी 'ब्रह्मभाष्य' में से व्याख्या करके समझा जाते। योगमाया उनसे बुद्धिपूर्वक ऐसे-ऐसे प्रश्न करती कि वेदान्तरत्न महाशय पुलकित हो उठते। योगमायाके साथ आलोचना करनेमें उनके उत्साहकी सीमा न रहती। वरदाशंकरने योगमायाके चारों तरफ छोटे-बड़े जितने भी गुरु और गुरुतरोंको जुटा रखा था, उनके प्रति वेदान्तरत्न महाशयको बड़ी-भारी अवज्ञा थी। वे योगमायासे कहा करते थे, "बेटी, सारे शहरमें सिर्फ एक तुम्हारे ही साथ बात करके मैं सुखी होता हू। तुमने मुझे आत्म-धिक्कारसे बचा लिया।"

इस प्रकार, पत्रामें वर्णित व्रत-उपवास आदिकी जजीरसे बँधे हुए बिना-छुट्टीके दिन किसी कदर कटते गये। शुरूसे आखिर तक साराका

सारा जीवन ऐसा हो उठा, जिसे आजकलकी विचित्र अखबारू भाषामें कहा जा सकता है बाध्यता-मूलक।

पतिकी मृत्युके बाद ही योगमाया अपने पुत्र यतिशकर और पुत्री सुरमाको लेकर बाहर निकल पड़ीं। अब वे जाड़ोंमें रहती हैं कलकत्ते, और गरमियोंमें चली जाती हैं किसी ठडे पहाड़पर। यतिशकर अभी कालेजमे पढ रहा है; पर सुरमाको पढाने-लायक कोई कन्या-विद्यालय पसन्द न आनेसे उन्होंने बड़ी खोजके बाद लावण्यलताको ढूढ निकाला है। उसीके साथ आज सवेरे अचानक अमितकी भेंट हो गई।

४

लावण्य-इतिहास

लावण्यके बाप अवनीश दत्त पश्चिमके एक कालेजके प्रिन्सिपल थे। मातृहीन लड़कीको उन्होंने इस तरह पाल-पनासकर बड़ा किया था कि बहुत परीक्षा पास करनेकी माजा-घसी भी उसकी विद्या-बुद्धिको कोई नुकसान नहीं पहुचा सकी। यहाँ तक कि अब भी उसका पढनेका अनुराग प्रबल है।

बापको एकमात्र शौक था विद्याका; और लड़कीमें उनका वह शौक सम्पूर्णतः परितृप्त हो गया। वे अपनी लाइब्रेरीसे भी लड़कीको ज्यादा प्यार करते थे। उनका ऐसा विश्वास था कि ज्ञानकी चर्चासे जो मन ठोस हो जाता है, फिर वहाँ ऐसी दरारें रह ही नहीं जातीं जहाँसे उड़नेवाली चिन्ताकी गैस ऊपर आ सके। ऐसे आदमीके लिए ब्याह करनेकी जरूरत नहीं होती। उनकी यह भी धारणा थी

कि उनकी लड़कीके मनमें पति-सेवाके आबाद होने लायक जो नरम जमीन बाकी रह सकती थी, वह गणित और इतिहासकी सीमेन्टसे पक्की हो गई है, और खूब मजबूत पक्के मनके लिए कहा जा सकता है कि बाहरसे चोट या खरोंच लगनेसे उसपर दाग नहीं पड़ सकते। उन्होंने यहाँ तक सोच रखा था कि लावण्यका व्याह न हुआ, तो न सही, पाण्डित्यके साथ ही हमेशाके लिए गठबन्धन हुआ रहेगा तो क्या बुराई है?

उनके और भी एक स्नेहका पात्र था। उसका नाम है शोभनलाल। कम उमरमें पढनेकी तरफ इतना ध्यान और-किसीमें देखनेमें नहीं आता। प्रशस्त ललाट, आँखोंमें भावोंकी स्वच्छता, ओठोंके भावमे सौजन्य, हँसीके भावमें सरलता और मुहके भावमे सुकुमारता ऐसी है कि उसका चेहरा देखते ही मन उसकी तरफ खिंच ही जाता है। लड़का निहायत मुह-चोर है, उसकी तरफ जरा-सा ध्यान देते ही वह व्यग्र-सा हो उठता है।

वह गरीबका लडका है। छात्रवृत्तिकी सीढियोंके सहारे दुर्गम परीक्षाके शिखर पार करता हुआ आगे बढ रहा है। भविष्यमें शोभन अपना नाम कर सकेगा, और उस ख्यातिको गढके तैयार करनेवाले कारीगरोंकी फरदीमें अवनीशका नाम सबसे ऊपर रहेगा, इस बातका गर्व अध्यापकके मनमे मौजूद था। शोभन उनके घर पाठ लेने आया करता था; और उनकी लाइब्रेरीमें उसका अबाध सचरण था। लावण्यको देखकर वह मारे सकोचके गड़-गड़ जाता। सकोचके इस अतिदूरत्वके कारण लावण्यके लिए शोभनलालसे अपने आपको बड़ा करके देखनेमें कोई बाधा नहीं थी। दुविधामें पड़कर जो

पुरुष यथेष्ट जोरके साथ अपनेको प्रत्यक्ष नहीं कराता, स्त्रियाँ उसे यथेष्ट स्पष्टतासे प्रत्यक्ष्य नहीं करतीं।

इतनेमे, एक दिन शोभनलालके बाप नवनीगोपाल अवनीशके घरपर चढाई करके उन्हे खूब एक चोट जली-कटी सुना गये। शिकायत यह थी कि अवनीशने अपने घरपर पढानेका बहाना करके ब्याहके लिए लड़का फाँसनेका जाल बिछा रखा है; वे वैद्य-जातिके लड़के शोभनलालकी जात बिगाड़कर समाज-सुधारका शौक मिटाना चाहते हैं। इस अभियोगके प्रमाण-स्वरूप उन्होने पेन्सिलसे खिंची हुई लावण्यलताकी एक तसवीर पेश की। तसवीर बरामद हुई थी शोभनलालके टीनके ट्रङ्कमेंसे, उसमे वह गुलाबकी पखड़ियोंसे ढकी पड़ी थी। नवनीगोपालको इसमे जरा भी सन्देह नहीं था कि यह चित्र लावण्यकी तरफसे प्रणयका दान है। पात्रके हिसाबसे शोभनलालका बाजार-भाव कितना ऊँचा है, और, और-कुछ दिन सब्र किये बैठे रहनेसे वह कीमत कितनी ज्यादा बढ जायगी, नवनीगोपालके हिसाबी दिमागमें यह बात पाई-पाईके हिसाबसे मिली-मिलाई रखी थी। ऐसी कीमती चीजपर अवनीश मुफ्तमे ही दखल जमानेका फन्दा डाल रहे हैं, इसे सेंध मारकर चोरी करनेके सिवा और क्या नाम दिया जा सकता है? धन-दौलतकी चोरीमे और इसमे लेशमात्रका फर्क है कहाँ? अब तक लावण्यको इस बातका पता ही न था कि किसी छिपी हुई वेदीपर श्रद्धाहीन लोक-दृष्टिके आगोचरमे उसकी मूर्ति-पूजा प्रचलित हो गई है। अवनीशकी लाइब्रेरीके एक कोनेमें नाना प्रकारके पैम्फलेट मैगजिन आदिके कूड़े-करकटमे लावण्यका एक सम्हालकी कमीसे मलिन फोटोग्राफ दैवसे शोभनलालके हाथ पड़ गया

था। उसे ले जाकर उसने अपने किसी आर्टिस्ट मित्रसे उसका एक कलापूर्ण चित्र बनवा लिया था, और उस फोटोग्राफको उसने जहांका तहां रख दिया था। गुलाब फूल भी उसके तरुण मनके सलज्ज गुप्त प्रेमकी तरह ही सहज-स्वाभाविक रूपसे खिले थे, एक मित्रके बगीचेमें, उसमें किसी अधिकारके औद्धत्यका इतिहास नहीं था। फिर भी- सजा उसे भुगतनी ही पड़ी। और, यह शरमीला लड़का सिर झुकाये, सुर्ख चेहरा लिये, छिपाकर अपने आंसू पोंछता हुआ इस घरसे विदा हो गया। दूरसे उसने अपने आत्म-निवेदनका एक शेष परिचय दिया, जिसका विवरण सिवा एक अन्तर्यामीके और कोई जान ही न सका। बी० ए० परीक्षामे जब कि उसने प्रथम स्थान पाया था, लावण्यने तब तृतीय स्थान प्राप्त किया था। उस घटनाने लावण्यको बहुत ज्यादा आत्म-लघुताका दुःख दिया। इसके दो कारण थे, एक तो यह कि शोभनलालकी बुद्धिपर अवनीशकी अत्यन्त श्रद्धा थी, जिसने लावण्यको बहुत दिनों तक चोट पहुंचाई थी। इस श्रद्धाके साथ अवनीशका विशेष स्नेह घुल-मिल जानेसे उसकी व्यथा और भी बढ़ गई थी। परीक्षा-फलमें शोभनसे आगे बढ जानेके लिए उसने खूब जी-जानसे कोशिश की थी। फिर भी शोभन जब उससे आगे बढ़ गया, तो इस स्पर्धाके लिए उसे क्षमा करना ही कठिन हो गया। लावण्यके मनमें कैसा-तो-एक सन्देह-सा बना रहा कि उसके पिताजी खास तौरसे शोभनकी सहायता करते रहते हैं, इसीसे दोनों परीक्षितोंके नतीजेमें इतना फर्क हुआ है। और, मजा यह कि परीक्षाके पाठके विषयमें शोभन किसी भी दिन अवनीशके सामने नहीं गया। कुछ दिन तक तो ऐसा रहा कि शोभनके साथ प्रतियोगितामे लावण्यके जीतनेकी कोई उम्मीद ही

नहीं थी। फिर भी हुई उसीकी जीत। और तो और, स्वय अवनीश दग रह गये। शोभनलाल अगर कवि होता, तो शायद वह भर-भर कापी कविता लिखा करता ; उसके बदले उसने परीक्षा-पास करनेके अपने बड़े-बड़े मार्क-पुष्प लावण्यके लिए उत्सर्ग कर दिये।

उसके बाद इन लोगोंकी छात्र-दशा जाती रही। इतनेमें सहसा, अवनीशको अपनी सख्त बीमारीमें, अपने आपमें ही इस बातका प्रमाण मिल गया कि ज्ञानकी चर्चासे मन ठोस भरा रहनेपर भी मनसिज उसीमेंसे कहींसे, सारी रोक-थाम हटा-हुटाकर, उठ खड़ा होता है ; उसके लिए जरा भी स्थानाभाव नहीं होता। तब अवनीशकी उमर थी सैंतालीस वर्षकी। उस अत्यन्त दुर्बल निरुपाय उमरमें कहींसे एक विधवा उनके हृदयमें प्रवेश कर गई, एकदम उनकी लाइब्रेरीके ग्रन्थ-व्यूहको भेदकर, उनके पाण्डित्यको चहारदीवारीको लाँघकर। उससे ब्याह करनेमें और कोई बाधा नहीं थी, सिर्फ एक बाधा थी, लावण्यके प्रति उनका स्नेह। इच्छाके साथ बड़ी-भारी लड़ाई शुरू हो गई। पठन-पाठन वे खूब जोरके साथ करना चाहते, पर उससे भी जिसमें ज्यादा जोर है ऐसी एक चमत्कारी चिन्ता पठन-पाठनके सर हो जाती। समालोचनाकी खातिर 'मॉडर्न-रिव्यू' से उनके लिए नई-नई लोभनीय पुस्तके आती रहतीं, बौद्ध-ध्वसावशेषके इतिहास-सम्बन्धी, पर अनुद्घाटित पुस्तकोंके सामने वे स्थिर बैठे रहते, उस टूटे-फूटे बौद्धिक-स्तूपकी तरह, जिसे सैकड़ों वर्षोंका मौन टकटकी लगाये देखा करता है। सम्पादक व्याकुल हो उठते, वे नहीं जानते कि ज्ञानीका स्तूपाकार ज्ञान जब हिलता है तब उसकी ऐसी ही दशा हो जाया करती है। हाथी जब दलदलमें कदम रख चुकता है, तब उसके बचनेका क्या उपाय है ?

इतने दिनों बाद अवनीशके मनमें एक तरहका परिताप व्यथा देने लगा। उन्हें मालूम हुआ कि उन्होंने, शायद पोथीके पन्नोंसे आँख उठाकर देखनेकी फुरसत न मिलनेसे, यह नहीं देखा कि शोभनलालको उनकी लड़की प्यार करती है, कारण शोभन जैसे लड़केको प्यार न कर सकना ही अस्वाभाविक है। साधारण तौरसे बाप-जातिपर ही उन्हें गुस्सा आया, अपने ऊपर और साथ ही नवनीगोपालपर।

इतनेमे शोभनकी एक चिट्ठी आई। प्रेमचन्द-रायचन्द-छात्रवृत्तिके लिए गुप्त-राजवशके इतिहासके आधारपर निबन्ध लिखकर उसे वह दाखिल करना चाहता है और उसके लिए उनकी लाइब्रेरीसे उसे कुछ किताबें उधार चाहिए। उसी समय उन्होंने उसे विशेष आदरके साथ चिट्ठी लिख दी, लिख दिया—"पहलेकी तरह मेरी लाइब्रेरीमें बैठकर ही तुम लिखो-पढो, जरा भी सकोच न करना।"

शोभनलालका मन चचल हो उठा। उसने समझ लिया कि ऐसी उत्साहप्रद चिट्ठीके पीछे शायद लावण्यकी सम्मति छिपी हुई है। उसने लाइब्रेरीमे आना शुरू कर दिया। घरमें आने-जानेके मार्गमे दैववश कभी क्षण-भरके लिए लावण्यसे भेंट हो ही जाती। तब शोभन अपनी गतिको जरा मन्द कर देता। उसकी अत्यन्त इच्छा रहती कि लावण्य उससे कोई बात करे, पूछे कि 'कैसे हो?' जिस निबन्धके लिखनेमें वह इतना व्यस्त है, उसके बारेमे कुछ दिलचस्पी जाहिर करे। अगर करती, तो कापी खोलकर थोड़ी देरके लिए लावण्यके साथ आलोचना करके वह जी जाता। यह जाननेके लिए कि उसके कुछ अपने उद्भावित सिद्धान्तोंके सम्बन्धमे

लावण्यकी क्या राय है, उसे अत्यन्त उत्सुकता थी। पर अभी तक कोई बात ही नहीं हुई, और इतनी उसमें हिम्मत नहीं कि अपनी तरफसे चलाकर कुछ कह सके।

इसी तरह कई दिन बीत गये। उस दिन रविवार था। शोभनलाल अपने कागजात टेबिलपर रखे हुए एक किताबके पन्ने उलट रहा था, और बीच-बीचमे कुछ नोट करता जाता था। दोपहरका वक्त था और घरमें कोई था नहीं। छुट्टीके दिनका मौका देखकर अवनीश किसीके घर चले गये थे, जिसका नाम नहीं बता गये, सिर्फ कह गये कि आज वे चाय पीने नहीं आयेंगे।

सहसा किसी समय फिरे-हुए किवाड खुल गये। शोभनलालकी छाती धड़क उठी, वह काँप गया। लावण्य कमरेके भीतर चली आई। शोभन घबराकर उठ बैठा; उसकी कुछ समझमें न आया कि वह क्या करे। लावण्य आग-बबूला होकर बोली—"आप क्यों आये इस मकानमे?"

शोभनलाल चौंक पड़ा, उसकी जबानपर कोई जवाब न आया।

"आप जानते हैं, यहां आनेके बारेमे आपके पिताने क्या कहा है? मेरा अपमान करानेमें आपको सकोच नहीं होता?"

शोभनलालने आँखें नीची करके कहा—"मुझे माफ कीजियेगा, मैं अभी चला जाता हूँ।"

उससे ऐसा एक उत्तर तक नहीं दिया गया कि स्वय उसके पिताने उसे आमत्रण देकर बुलाया है। उसने अपने कागजात वगैरह सब इकट्ठे कर लिये। उसके हाथ थर-थर काँप रहे थे; एक गूंगी व्यथा पसलीकी हड्डियोंको धकेलकर ऊपर आना चाहती है,

पर रास्ता नहीं पाती। सिर झुकाये वह घरसे बाहर चला गया।

जिससे बहुत ही ज्यादा प्रेम किया जा सकता था, उससे प्रेम करनेका मौका अगर किसी एक बाधासे टकराकर हाथसे छूटकर गिर जाय, तो वह केवल अप्रेममें ही परिणत नहीं होता, बल्कि तब वह एक अन्ध-विद्वेषमें परिणत हो जाता है। प्रेमका ही दूसरा पहलू है वह। किसी दिन शोभनलालको वरमाला पहनानेके लिए ही लावण्य अपने अगोचरमें प्रतीक्षा किये बैठी थी। शोभनलालकी तरफसे ही शायद उसका वैसा जवाब नहीं मिला। उसके बाद जो-कुछ हुआ, सब उसके विरुद्ध ही गया। सबसे ज्यादा चोट पहुँची इस आखिरी वक्तमें। लावण्यने अपने मनके क्षोभमें पिताके प्रति बहुत ही ज्यादा अन्याय किया। उसे ऐसा मालूम हुआ कि खुद छुटकारा पा जानेके खयालसे उन्होंने अपनी तरफसे जान-बूझकर ही शोभनलालको फिरसे बुलाया है, उन दोनोंमें मेल करानेकी कामनासे। इसीसे ऐसा निष्ठुर क्रोध आ पड़ा उस बेचारे निरपराधपर।

इसके बाद, लावण्यने लगातार जिद कर-करके अवनीशका ब्याह करा दिया। अवनीशने अपने संचित धनका लगभग आधा हिस्सा अपनी लड़कीके लिए अलग कर रखा था। उनके ब्याहके बाद लावण्य कह बैठी कि वह अपने पिताकी सम्पत्तिमेंसे कुछ भी नहीं लेगी, स्वाधीनतासे कमाकर अपनी गुजर करेगी। अवनीशने मर्माहत होकर कहा—"मैंने तो ब्याह करना नहीं चाहा था लावण्य, तुम्हींने तो जिद करके यह ब्याह कराया है। तब फिर आज क्यों तुम मुझे इस तरह त्याग रही हो?"

लावण्यने कहा—"हमारा सम्बन्ध जिससे क्षुण्ण न हो, इसीलिए

मैंने ऐसा सकल्प किया है। तुम कुछ फिकर मत करो, बापूजी। जिस मार्गमें मै वास्तवमें सुखी होऊँ, उसी मार्गमें हमेशा तुम अपना आशीर्वाद बनाये रखना।"

काम उसे मिल गया। सुरमाको पढानेका पूरा भार उसीपर है। यतिशकरको भी आसानीसे पढा सकती थी वह, पर महिला शिक्षयित्रीके पास पढ़नेका अपमान स्वीकार करनेको यतिशकर किसी भी तरह राजी नहीं हुआ।

प्रतिदिनके बँधे हुए काममें जीवन किसी तरहसे चला जा रहा था। बचा हुआ समय ठसाठस भरा हुआ था अगरेजी साहित्यसे, प्राचीन कालसे शुरु करके हालके बर्नर्ड शॉके युग तक, खास कर ग्रीक और रोमन युगके इतिहाससे, ग्रोट गिबन और गिलबर्ट मरेकी रचनाओंसे। किसी-किसी अवकाशमें एक चचल हवा आकर उसके मनके भीतर थोड़ा-बहुत उथल-पुथल न कर जाती हो, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, पर हवासे बढकर स्थूलतर कोई व्याघात सहसा उसके भीतर घुस आ सके, उसकी जीवन-यात्रामे इतना बड़ा छेद शायद नहीं था। होनहारकी बात कि ठीक इसी समय व्याघात आ पड़ा मोटर-गाड़ीमे बैठे-बैठे, बीच रास्तेमें चलते-चलते, कोई आहट तक बगैर किये। सहसा ग्रीस-रोमका विराट इतिहास हलका हो गया, और सब-कुछको हटाकर बहुत ही निकटके एक निविड़ वर्तमानने उसे झकझोर कर कहा— "जागो!" लावण्य एक ही क्षणमें जाग उठी, और इतने दिनों बाद अपनेको देख सकी; ज्ञानमें नहीं, वेदनामें।

५

परिचयका आरम्भ

अतीतके भग्नावशेषसे अब लौट चलना चाहिए वर्तमानकी नवीन सृष्टिके क्षेत्रमें।

लावण्य अपने पढ़ने-लिखनेके कमरेमे अमितको बिठाकर योगमायाको खबर देने चली गई। उस कमरेमे अमित ऐसे बैठा जैसे कमलके बीच भौंरा बैठता है। वह चारों ओर देखता है तो सभी चीजोंसे एक तरहका स्पर्श-सा आ लगता है उसके मनपर, और वह उसे उदास कर देता है। आलमारीमे और पढ़नेकी टेबिलपर उसने अंग्रेजी साहित्यकी किताबें देखीं, ऐसा लगा जैसे वे जिन्दा हो उठी हों। सब लावण्यकी पढ़ी हुई किताबें हैं। उसकी उंगलियोंने इनके पन्ने उलटे हैं, दिन-रात इनमे उसकी विचारधारा बहती रहती है, उसकी उत्सुक दृष्टि चला-फिरा करती है इनपर, और अन्यमनस्क दिनोंमे ये उसकी गोदमे पड़ी रहती हैं। टेबिलपर जब उसने अंग्रेज कवि डॉनका काव्य-संग्रह रखा देखा, तो वह चौंक उठा। ऑक्सफोर्डमें रहते हुए डॉन और उनके समयके कवियोंके गीति-काव्य अमितके प्रधान आलोच्य विषय थे; यहाँ आज इस काव्यमें दैवसे दोनोंके मनोंने एक जगह आकर परस्परको स्पर्श किया।

बहुत दिनोंसे निरुत्सुक दिन-रातोंके दाग लग-लगकर अमितका जीवन धुंधला-सा हो गया था, जैसे वह मास्टरके हाथकी स्कूलमें हर साल पढाई जानेवाली ढीली जिल्दकी टेक्स्ट-बुक हो। आनेवाले दिनके लिए कोई कुतूहल नहीं था और मौजूदा दिनका पूरे मनसे

स्वागत करना उसे अनावश्यक जान पड़ता था। अब वह, अभी-अभी एक नये ग्रहमें आ पहुँचा है। यहाँ वस्तुका भार कम है, पैर जमीन छोड़कर मानो अधर चल रहे हों, प्रतिक्षण व्यग्र होकर अचिन्तनीयोंकी तरफ बढते जा रहे हों। देहसे हवा लगती और सारी देह मानो बाँसुरी हो जाना चाहती। आकाशका प्रकाश रक्तमें प्रवेश करता और उसके भीतर-ही-भीतर ऐसी एक उत्तेजनाका सचार होता जिसे वृक्षके सर्वाङ्ग-प्रवाहित रसमे फूल खिलानेकी उत्तेजना कहा जा सकता है। मनके ऊपरसे न-जाने कितने दिनोंका धूल-पड़ा परदा उठ गया, साधारण चीजमेंसे खिल-उठी एक असाधारणता। इसीसे, योगमायाने जब धीरे-धीरे घरमे प्रवेश किया, तब उस बिलकुल स्वाभाविक बातमें भी अमितको आज विस्मय मालूम हुआ। उसने मन-ही-मन कहा, 'अहा, यह तो आगमन नहीं, आविर्भाव है!'

चालीसके लगभग उनकी उमर है, पर उमरने उन्हे शिथिल नहीं किया, बल्कि सिर्फ एक गम्भीर शुभ्रता दी है। गोरा भरा हुआ चेहरा है और वैधव्य-रीतिसे माथेके बाल छॅटे हुए हैं। मातृभावसे परिपूर्ण प्रसन्न आँखें हैं; और उसमे है स्निग्ध हॅसी। मोटी सफेद चादर माथेको वेष्टन करती हुई सारे शरीरको ढके हुए है। पाँवोंमें जूते नहीं, दोनो पाँव निर्मल और सुन्दर हैं। अमितने पाँव छूकर जब उन्हे प्रणाम किया, तो उसकी नस-नसमें मानो देवीके प्रसादकी धारा बह निकली।

प्रथम परिचयके बाद योगमायाने कहा—"तुम्हारे काका अमरेश थे हमारे जिलेके सबसे बड़े वकील। एक दफे एक सत्यानासी

है ; नक्षत्र-नक्षत्रोंमें उसकी सम्मिलित धारा युग-युगसे चलकर शुक्रवारको ठीक नौ बजके अड़तालीस मिनटके वक्त लगा एक धक्का। उसके बाद ?"

योगमाया लावण्यकी तरफ कनखियोंसे देखकर जरा हँस दीं। अमितके साथ काफी परिचय होते-न-होते ही वे तय कर बैठी कि इन दोनोंका ब्याह हो जाना चाहिए। उसी बातको ध्यानमें रखकर उन्होंने कहा—"बेटा, तुम दोनों तब तक बातचीत करो, मैं यहींपर तुम्हारे खाने-पीनेका इन्तजाम किये आती हूँ।"

तेज तालसे बातचीत जमानेकी अमितमें शक्ति है। उसने चटसे शुरू कर दिया—"मौसीजीने हम लोगोंको बातचीत करनेकी आज्ञा दे दी है। शुरू होना चाहिए नामसे, पहले उसको पक्का कर लेना ठीक होगा। आप मेरा नाम तो जानती हैं न, अंग्रेजी व्याकरणमें जिसे प्रॉपरनेम कहते हैं ?"

लावण्यने कहा—"मै तो जानती हूँ, आपका नाम अमित बाबू है।"

"पर यह नाम सभी क्षेत्रोंमे नहीं चलता।"

लावण्यने हँसकर कहा—"क्षेत्र अनेक हो सकते हैं, पर अधिकारीका नाम तो एक ही होना चाहिए।"

"आप जो बात कह रही है, वह इस जमानेकी बात नहीं है। देश-काल-पात्रमें भेद हो और नाममें भेद न हो, यह अवैज्ञानिक है। मैंने तय किया है कि Relativity of names (नामोंकी आपेक्षिकता) का प्रचार करके मैं नामवर होऊँगा। उसके प्रारम्भमें ही जता देना चाहता हूँ कि आपके मुहसे मेरा नाम अमित बाबू न होगा।"

"आप साहबी कायदा पसन्द करते हैं ? मिस्टर रॉय।"

"एकदम समुद्रके उस पारका, बहुत दूरका नाम है यह। नामका फासला ठीक करनेके लिए नापके देखना चाहिए कि शब्दको कानके सदरसे मनके अन्दर तक पहुँचनेमें कितनी देर लगती है।"

"तेज रफ्तारका नाम है कौन-सा, सुनू भी तो?"

"रफ्तार तेज करनेके लिए बोझ घटाना पड़ेगा। अमित बाबूके 'बाबू' को निकाल दीजिये।"

लावण्यने कहा—"आसान नहीं, समय लगेगा।"

"समय सबके लिए समान नही लगना चाहिए। 'एक घड़ी' नामकी कोई चीज नहीं; हाँ, 'जेब-घड़ी' है; और जेबके माफिक उसकी चाल होती है। आइनस्टाइनका यही मत है।"

लावण्य उठके खड़ी हो गई; बोली—"लेकिन आपके नहानेका पानी ठंडा हुआ जा रहा है।"

"ठंडे पानीको मैं शिरोधार्य कर लूँगा, अगर बातचीतके लिए और भी जरा समय दें।"

"समय अब नहीं है।"—कहकर लावण्य भीतर चली गई।

अमित उसी समय उठकर नहाने नहीं गया। लावण्यकी मन्द-मन्द मुसकराहट उसके प्रत्येक शब्दपर कैसा लालित्य और माधुर्य बरसा रही थी, बैठा-बैठा वह उसीकी याद करने लगा। उसने बहुत-सी सुन्दरी लड़कियोंको देखा है, उनका सौन्दर्य पूनोंकी रातकी तरह उज्ज्वल होते हुए भी आच्छन्न-सा है; पर लावण्यका सौन्दर्य प्रात कालके समान प्रसन्न और ताजा है, उसमें अस्पष्टताका मोह नहीं; उसका सब-कुछ बुद्धिसे परिव्याप्त है। उसे स्त्रीके रूपमें गढ़ते समय विधाताने उसमें थोड़ा-सा पुरुषका भाग भी मिला दिया है; उसे देखते ही ऐसा मालूम होता है

कि उसमें केवल वेदनाकी ही शक्ति नहीं, बल्कि साथ ही मननकी भी शक्ति है। और खासकर उसीने अमितको इस तरह आकर्षित किया है। अमितमें बुद्धि है, पर क्षमा नहीं; विचार है, पर धैर्य नहीं। उसने बहुत-कुछ जाना है, सीखा है, किन्तु शान्ति नहीं पाई। लावण्यके चेहरेपर उसने ऐसा एक शान्तिका रूप देखा है जो हृदयकी तृप्तिसे नहीं, बल्कि उसकी विवेचना-शक्तिकी गम्भीरतासे अचंचल है।

६

नया परिचय

अमित मिलनसार आदमी ठहरा। प्रकृतिके सौन्दर्यसे उसका ज्यादा देर तक काम नहीं चल सकता। हमेशा ही खुद बक-झक करना उसकी आदतमें शुमार है। पेड-पौधे और पहाड़-पर्वतके साथ हँसी-मजाक नहीं चल सकता। उनके साथ किसी तरहका उलटा व्यवहार करनेसे मार खानी पड़ती है; क्योंकि वे खुद भी नियमसे चलते हैं, और दूसरोंसे भी नियमकी पाबन्दी पसन्द करते हैं, एक वाक्यमें कहा जाय तो यों कहना चाहिए कि वे अरसिक हैं; और यही वजह है कि शहरके बाहर अमितका जी हाँफने लगता है।

परन्तु अचानक न-जाने क्या हो गया कि शिलांग पहाड़ चारों तरफसे अमितको अपने रसमें पागे ले रहा है। आज वह सूर्योदयके पहले ही उठा है; यह उसके स्वधर्मके विरुद्ध है। खिड़कीसे देखा कि देवदार पेड़की झालरें काँप रही हैं, और उसके पीछे पतले बादलोंके ऊपरसे, पहाड़के उस पारसे, सूर्यने अपनी कूचीकी लम्बी-लम्बी सुनहली रेखाएँ खींच

दी हैं, आगसे जली हुई जो-सब रंगकी आभाएँ खिल उठी हैं उनके सम्बन्धमें चुप रहनेके सिवा और कोई उपाय ही नहीं।

झटपट एक प्याला चाय पीकर अमित घरसे निकल पड़ा। रास्ता तब बिलकुल सुनसान था। एक बहुत ही पुराने काई-शुदा पाइनके पेड़के नीचे, झरे हुए पत्तोंकी तहोंके घनी-सुगन्धि-युक्त-फर्शपर वह पैर फैलाके बैठ गया। एक सिगरेट सुलगाकर बहुत देर तक उसे वह दो उंगलियोंमें दबाये रहा, कश लगाना भूल गया।

योगमायाके घरके रास्तेमें यह जंगल पड़ता है। ज्योनारमें बैठनेके पहले रसोई-घरसे जैसे पेशगी महक आया करती है, इस जगहसे अमित योगमायाके घरका सौरभ उसी तरह भोगा करता है। समय घड़ीके भद्र-दागपर पहुँचते ही वहाँ जाकर वह एक प्याला चायकी माँग पेश करेगा। पहले वहाँ जानेका उसका समय निर्धारित था, शामको। साहित्य-रसिक होनेकी ख्यातिके सहारेसे उसे आलाप-आलोचनाके लिए वहाँ बँधा हुआ निमन्त्रण मिल गया था। शुरू-शुरूमें दो-चार दिन योगमायाने इस आलोचनामें अपना उत्साह प्रकट किया था; परन्तु योगमायाको भास गया कि उससे इस पक्षका उत्साह मानो कुछ सकुचा-सा रहा है। यह समझना कठिन न था कि इसका कारण द्विवचनकी जगह बहुवचनका प्रयोग है। उसके बादसे योगमायाके अनुपस्थित रहनेका कारण बार-बार आता रहता। जरा-सा विश्लेषण करते ही समझ लिया गया कि वे कारण अनिवार्य नहीं, दैवकृत भी नहीं, बल्कि इच्छाकृत हैं। साबित हो गया कि माताजीने इन दोनों आलोचना-परायणोंमें जो अनुराग देखा है वह साहित्यानुरागसे जरा-कुछ विशेष गाढ़ा है। अमितने समझ लिया कि मौसीकी उमर जरूर कुछ ज्यादा हो गई है, लेकिन

दृष्टि तीक्ष्ण है; फिर भी मजा यह कि मन कोमल बना हुआ है। इसीसे आलोचनाका उत्साह उसका और भी प्रबल हो गया। निर्दिष्ट समयको प्रशस्ततर करनेके अभिप्रायसे यतिशकरके साथ उसने सममौता कर लिया कि उसे वह सवेरे एक घण्टे और शामको दो घण्टे अंग्रेजी साहित्य पढानेमे सहायता किया करेगा। और शुरू कर दी सहायता, इतने बाहुल्यके साथ कि अकसर सवेरा ढुलक जाया करता दोपहर तक, और सहायता लुढक जाया करती फालतू बातोंमे। अन्तमें योगमाया और भद्रताके अनुरोधसे दोपहरका खाना जरूरी कर्त्तव्यमे दाखिल हो जाता। इस तरह देखा गया कि जरूरी कर्तव्यकी परिधि पहर-पहरमें बढ़ती ही गई।

यतिशकरको पढानेकी बात थी सवेरे आठ बजे। पर उसकी प्रकृतिकी अवस्थाके लिए वह था असमय। वह कहता, 'जिस जीवकी गर्भ-वासकी मियाद दस महीने है उसके सोनेकी मियाद पशु-पक्षियोंके मापसे नहीं मिलती।' अब तक अमितके रातके समयने उसके सवेरेके बहुतसे घटोंको खम्भा-गाड़ी बना रखा था। वह कहता, 'यह चुराया हुआ समय अवैध होनेके कारण ही नींदके लिए सबसे ज्यादा अनुकूल है।'

पर आजकल उसकी नींद विशुद्ध नहीं रही। उसके अन्दर जल्दी उठनेका आग्रह बना रहता। आवश्यकताके पहले ही नींद खुल जाती; उसके बाद करवट बदलकर सोनेकी हिम्मत नहीं होती, कहीं देर न हो जाय। बीच-बीचमें उसने घड़ीका काँटा आगे बढा दिया है; मगर समयकी चोरीका अपराध कहीं पकड़ा न जाय इस डरसे बार-बार ऐसा करना सम्भव न होता। आज एक बार उसने घड़ीकी तरफ देखा, देखा कि दिन अभी सात बजेके इसी पार है। उसे लगा कि घड़ी जरूर बन्द पडी है। कानसे लगाई तो टिकटिक शब्द सुनाई दिया।

इतनेमें चौंककर देखा कि दाहने हाथमें छतरी हिलाती हुई ऊपरके रास्तेसे लावण्य आ रही है। सफेद साड़ी पहने है, पीठपर काले रंगका तिकोना दुशाला पड़ा है, जिसमें काली झालर लटक रही है। अमित समझ गया कि लावण्यकी आधी दृष्टिने उसे मालूम कर लिया है, किन्तु पूरी दृष्टिसे मुकाबलेमें उसे कबूल करनेको वह राजी नहीं। घुमावके पास तक ज्यों ही लावण्य पहुंची नहीं कि फिर अमितसे रहा न गया, दौड़ता हुआ वह उसके पास जा पहुंचा।

उसने कहा—"जानती थीं कि बच नहीं सकतीं, फिर भी दौड़ करा ही ली। आप जानतीं नहीं कि दूर चली जानेसे कितनी असुविधा होती है?"

"काहेकी असुविधा?"

अमितने कहा—"जो अभागा पीछे पड़ा रह जाता है उसका जी जोरसे पुकारना चाहता है। पर पुकारूँ क्या कहकर? देव-देवियोंके विषयमें इतनी तो सुविधा है कि नाम लेकर पुकारनेसे वे प्रसन्न रहते हैं। 'दुर्गा-दुर्गा' कहके गर्जन करनेपर भी भगवती दशभुजा असन्तुष्ट नहीं होतीं। पर आप लोगोंको लेकर बड़ी मुश्किल होती है।"

"पुकारा ही न जाय तो किस्सा खतम।"

"बिना सम्बोधनके ही काम चला लेता हूँ, जब पास रहती हैं। इसीसे तो कहता हूं, दूर न जाया करें। पुकारना चाहता हूं, पर पुकार नहीं सकता; इससे बढ़कर दुःख ही नहीं।"

"क्यों, बिलायती-कायदा तो आपको मालूम ही है।"

"मिस डाट्? सो तो चायकी टेबिलपर। देखिये न, आज इस आकाशके साथ पृथिवी जब सबेरेके प्रकाशमें मिली, तो इस मिलनके लग्नको

सार्थक करनेके लिए दोनोंने मिलकर एक रूपकी सृष्टि की, और उसीमें स्वर्ग मर्त्यका लाड़का नाम रह गया। मालूम नहीं हो रहा क्या, एक नाम लेकर पुकारना ऊपरसे नीचे आ रहा है और दूसरा नीचेसे ऊपर जा रहा है? मनुष्यके जीवनमें भी क्या ऐसा नाम सृष्टि करनेका समय नहीं उपस्थित होता? कल्पना कीजिये कि मैंने अभी जी खोलकर मुक्त कण्ठसे आपको पुकारा, नामकी पुकार सम्पूर्ण वनमें ध्वनित हो उठी और वह आकाशके उस रंगीन बादलोंके पास तक जा पहुँची; सामनेका वह पहाड़ उसे सुनकर माथेसे बादल लपेटकर खड़ा-खड़ा सोचने लगा। क्या कभी मनमें आप इस बातका खयाल भी कर सकती हैं कि वह पुकार 'मिस डाट्' होगी?"

लावण्य इस बातको टालती हुई बोली—"नामकरणमें समय लगता है, फिलहाल चलिये टहल आया जाय।"

अमित उसके साथ हो लिया; बोला—"चलना सीखनेमें भी आदमीको देर लगती है, पर मेरे लिए उलटी बात हो गई, इतने दिनों बाद यहाँ आकर मैंने बैठना सीखा है। अंग्रेजीमें कहते हैं—लुढ़कने पत्थरकी तकदीरमें काई भी नहीं जुटती, यही सोचकर अँधेरे ही उठकर ववका सड़कके किनारे आ बैठा हूं। इसीसे तो भोरकी किरण देखी आज।"

लावण्य चटसे उस बातको दबाकर पूछ उठी—"उस हरे पखवाली चिड़ियाका नाम जानते हैं?"

अमितने कहा—"जीव-जगत्में चिड़िया हैं, इस बातको अब तक साधारण तौरपर जानता था, विशेष रूपसे जाननेका समय नहीं मिला। यहाँ आकर, आश्चर्य है, अब स्पष्ट जान सका हूं कि चिड़ियाँ हैं, यहाँ तक कि वे गीत भी गाती हैं।"

लावण्य हँस उठी, बोली—"आश्चर्य है!"

अमितने कहा—"हँस रही हैं! मै अपनी गम्भीर बातपर भी गाम्भीर्य नहीं रख सकता। यह मेरी चेष्टाका दोष है, संस्कृतमें जिसे मुद्रादोष कहते हैं। मेरे जन्मलग्नमे चन्द्र है, और यह ग्रह कृष्णा-चतुर्दशी की सत्यानाशी रातको भी जरा मुसकराये विना मरना भी नहीं जानता।"

लावण्यने कहा—"मुझे दोष न दीजिये। शायद चिड़िया भी अगर आपकी बात सुनती, तो हँस देती।"

अमितने कहा—'देखिये, मेरी बात सहसा लोग समझ नहीं पाते, इसीसे हँस दिया करते हैं, समझते होते तो चुपचाप बैठकर उसपर विचार करते। आज चिड़ियोंको मैंने नई तरहसे जाना तो इसपर लोग हँसते हैं। पर इसके भीतरकी बात यह है कि आज सब-कुछ मैंने नई तरहसे जाना है, अपनेको भी। इसपर हँसी नहीं चल सकती। फिर भी अबकी बार आप बिलकुल चुप हैं।"

लावण्यने हँसते हुए कहा—"आप तो ज्यादा दिनके आदमी नहीं हैं, बिलकुल नये हैं, फिर, और-भी ज्यादा नयेका आग्रह आपमें आता कहांसे है?"

"इसके जवाबमे एक बहुत ही गम्भीर बात कहनी पड़ रही है जो चायकी टेबिलपर नहीं कही जा सकती। मेरे अन्दर नई जो बात आई है वह है तो अनादिकालकी पुरानी ही बात, भोरके प्रकाशकी तरह ही वह पुरानी है, नये खिले भू-चम्पा फूलके समान चिरकालकी चीज है, सिर्फ उसकी प्राप्ति-भर नई है।"

लावण्य कुछ बोली नहीं, सिर्फ हँस दी।

अमितने कहा—"अबकी बार आपकी जो यह हँसी है सो पहरेदारकी

घोर-पकड़नी गोल लालटेनकी हँसी है। समझ गया मैं, आप जिस कविकी भक्त हैं। उसकी पुस्तकसे आपने मेरे मुँहकी कही हुई बात पहले ही से पढ़ रखी है। दुहाई है आपको, मुझे दागी चोर न समझ लीजियेगा ; किसी-किसी वक्त ऐसी अवस्था हो जाती है कि मनका भीतरी भाग शंकराचार्य हो उठता है, जो कहता रहता है ; 'मैंने ही लिखा है या और किसीने लिखा है, यह भेद-ज्ञान माया है।' देखिये न, आज ही की बात है, सवेरे बैठे-बैठे सहसा मनमें आई कि अपने जाने हुए साहित्यमेंसे ऐसी एक लाइन निकाल लूँ जो मालूम हो कि अभी-अभी स्वयं मैंने ही लिखी है, और-कोई कवि ऐसा लिख ही नहीं सकता था।"

लावण्यसे रहा न गया, उसने पूछा—"निकाल सके फिर ?"

"हाँ, निकाल ली।"

लावण्यके कुतूहलने फिर कोई बाधा ही नहीं मानी, वह पूछ बैठी—"कौन-सी लाइन है, बताइये न ?"

"For God's sake, hold your tongue
and let me love !"

लावण्यका कलेजा काँप उठा।

बहुत देर बाद अमित बोला—"आप जरूर जानती हैं कि लाइन किसकी है ?"

लावण्यने जरा-सा सिर झुकाकर इशारेसे बता दिया—"हाँ।"

अमितने कहा—"उस दिन आपकी टेबिलपर मैंने अंग्रेज-कवि डॉनकी किताब ईजाद कर डाली थी, नहीं तो यह लाइन मेरे दिमागमें न आती।"

"ईजाद की ?"

"ईजाद नहीं तो क्या! किताबकी दूकानपर किताबें दिखाई पड़ती हैं, पर आपकी टेबिलपर किताबें प्रकट होती हैं। पब्लिक लाईब्रेरीकी टेबिल देखी है मैंने, वह तो सिर्फ किताबोंका बोझ झेला करती हैं; और एक आपकी टेबिल भी देखी, उसने किताबोंके रहनेके लिए घोंसला बना दिया है। उस दिन डॉनकी कविताएँ मैं हृदयसे देख सका। ऐसा लगा मानो और-सब कवियोंके दरवाजेपर भीड़ लगी हुई है, धक्कमधक्का हो रहा है; जैसे किसी बड़े आदमीके श्राद्धमें भिखमंगे दान ले रहे हों। मगर डॉनका काव्य-महल निर्जन है, एकान्त, वहाँ सिर्फ दो आदमियोंके लायक आस-पास बैठने-भरकी जगह है। इसीसे मुझे अपने सवेरेके मनकी बात ऐसी साफ-साफ सुनाई दी—

"जरा तो खामोश हो, है दुहाई रामकी,
प्यार करने दो मुझे, बात है यह कामकी।"

लावण्यने आश्चर्यके साथ पूछा—"आप कविता भी लिखते हैं क्या?"

"डर है शायद आजसे लिखना न शुरु कर दूं, नवीन अमित राय क्या गजब ढायेगा, पुराने अमित रायको इसका कुछ भी पता नहीं। हो सकता है कि वह अभी लड़ाई करने चल दे।"

"लड़ाई? किसके साथ?'

"अभी कुछ तय नहीं कर सका हूँ। बार-बार यही खयाल उठ रहा है कि किसी एक बड़ी-भारी बातके लिए इसी वक्त आँख मींचकर प्राण दे देना चाहिए; उसके बाद पश्चात्ताप करना पड़े तो धीरे-सुस्ते करता रहूँगा।"

लावण्यने हँसते हुए कहा—"प्राण अगर देने हो हो तो सावधानीसे दीजियेगा।"

"यह बात मुझसे कहना अनावश्यक है, कम्युनल रायट (साम्प्रदायिक

दगे) मे जाना मैं पसन्द नहीं करता। मुसलमान और अंग्रेजोंसे मैं बचकर चलूंगा। अगर देखूं कि बूढा-टेढा आदमी है, अहिंसा-तबीयतका धार्मिक चेहरा है, सिंगा बजाता हुआ मोटरपर जा रहा है, तो उसके सामने खड़ा होकर रास्ता रोकके कहूंगा, 'युद्धं देहि।' जो अजीर्ण-रोग दूर करनेके लिए अस्पताल न जाकर ऐसे पहाड़पर आते हैं, भूख बढानेके लिए निर्लज्ज होकर हवा खाने निकलते है, उनसे।"

लावण्य हँसके बोली—"इतनेंपर भी अगर वह विना कुछ परवाह किये ही चला जाय?"

"तब मैं पीछेसे दोनो हाथ आकाशकी ओर उठाकर कहूँगा, 'अबकी बार मैंने तुम्हे माफ कर दिया, तुम मेरे भाई हो, हम एक ही भारत-माताकी सन्तान हैं।' समझ गईं! मन जब बहुत बड़ा हो जाता है, आदमी तब युद्ध भी करता है और क्षमा भी।"

लावण्यने फिर हँसते हुए कहा—"आप जब युद्धका प्रस्ताव कर रहे थे तब मनमें डर लग रहा था, पर क्षमाकी बात जिस ढगसे आपने समझा दी, उससे तसल्ली हुई कि अब कोई चिन्ताकी बात नहीं।"

अमितने कहा—"मेरी एक बात रखियेगा?"

"क्या, बताइये?"

"आज भूख बढानेके लिए ज्यादा टहलिये नही।"

"अच्छा ठीक है, उसके बाद?"

"वहाँ नीचे, पेड़-तले, जहाँ नाना रंगोंकी काई-शुदा पत्थरके नीचेसे थोड़ा-थोड़ा पानी बह रहा है वहाँ बैठें जरा, चलिये।"

लावण्यने हाथमे बँधी घडीकी तरफ देखकर कहा—"मगर वक्त अब थोड़ा ही रह गया है।"

"जीवनमे यही तो शोचनीय समस्या है, लावण्य देवो, कि समय थोड़ा है। रेगिस्तानका सफर है और साथमें पानी है सिर्फ आधी मशक, इसलिए इस बातका खयाल हमें रखना ही होगा कि कहीं छलक-छलककर वह सूखी धूलमे पड़के मारा न जाय। जिनके पास समय बहुत ज्यादा है उन्हींके लिए पक्चुअल होना शोभा देता है; देवताओंके पास असीम समय है, इसीसे ठीक समयपर सूर्य उदय होता है और अस्त भी। हमलोगोंकी मियाद थोड़ी है, पक्चुअल बननेमें समय नष्ट करना हमारे लिए अमितव्ययिता है। अमरावतीका कोई अगर पूछ बैठे कि 'ससारमे आकर किया क्या?' तो किस मुँहसे यह जवाब दूँगा कि 'घड़ीके काँटेकी तरफ निगाह रखके काम करते करते उसकी तरफ आँख उठाकर देखनेका समय ही न रहा जो जीवनके समस्त समयके अतीत और जीवनका सर्वस्व था।' इसीसे तो कहनेको मजबूर हुआ कि चलिये, वहाँ चलकर बैठें जरा।"

अमित जब बातचीत करता है तब उसे इस बातकी कोई आशका ही नहीं रहती कि जिस बातमें उसे कोई आपत्ति नहीं, उसपर दूसरे किसीको कोई आपत्ति हो सकती है। इसीलिए उसके प्रस्तावपर आपत्ति करना कठिन है। लावण्यने कहा—"चलिये।"

घनी वनकी छाया है। पतली-सी पगडंडी नीचे खसियोंके एक गाँवकी तरफ उतर गई है। अध-बीचमें एक क्षीण झरनेकी धाराने गाँव जानेके उस रास्तेको अस्वीकार करते हुए उसपर अपने अधिकारके चिह्न-स्वरूप गोल-गोल ककड़ बिछाकर अपना एक अलग रास्ता चला दिया है। वहीं पत्थरपर दोनो जने बैठ गये। ठीक उसी जगह गड्ढा जरा गहरा हो गया है और वहाँ कुछ पानी जम गया है, मानो हरे परदेकी

छायामें कोई परदानशीन युवती खड़ी हो और बाहर कदम रखनेमें डर रही हो। यहाँका निर्जनताका आवरण ही लावण्यको निरावरणकी भाँति शर्मिन्दा करने लगा। मामूली कोई भी बात छेड़कर उसे ढकनेको जी चाहता है, पर कोई भी बात याद नहीं आ रही ; स्वप्नमें जैसे कण्ठ रुक जाता है वैसी ही दशा है।

अमित समझ गया कि उसे कुछ-न-कुछ बोलना ही चाहिए। उसने कहा—"देखिये आर्या, हमारे देशमें दो तरहकी भाषा है, एक साधु भाषा और दूसरी चालू। पर इनके सिवा और-भी एक तरहकी भाषा होनी चाहिए थी ; वह न तो समाजकी भाषा होती और न व्यवसायकी। वह होती आड़-ओटकी भाषा, ऐसी जगहोंके लिए। चिड़ियोंके गीत और कवियोंके काव्यके समान उस भाषाको अनायास ही कण्ठसे निकलना चाहिए था, जैसे रोना निकलता है। उसके लिए आदमीको किताबकी दूकानपर दौड़ना पड़े, यह बड़ी शर्मकी बात है। प्रत्येक बार हँसनेके लिए अगर कहीं डेन्टिस्टकी दूकानपर दौड़ना पड़ता, तो हमारी क्या हालत होती, जरा सोचिये तो सही? सच कहिये, लावण्य देवी, ऐसी जगहमें बैठकर क्या आपका संगीतके स्वरमें बात करनेको जी नहीं चाह रहा?"

लावण्य सिर झुकाये चुपचाप बैठी रही।

अमितने कहा—"चायकी टेबिलकी भाषामें कौन-सी भद्र है, कौन-सी अभद्र, इसका हिसाब ही नहीं मिटना चाहता। पर इस जगह न कुछ भद्र है, न अभद्र। तो अब क्या किया जाय, बताइये? मनको सहज-स्वाभाविक करनेके लिए कविता बगैर पढ़े काम नहीं चलनेका। गद्य बहुत समय लेता है, और उतना समय हाथमें है नहीं। अगर इजाजत दें तो शुरू करूँ?"

देनी पड़ी इजाजत ; नहीं तो लज्जा करते ही लज्जा आ धमकती।

अमितने भूमिका बाँधी—"रवीन्द्रकी कविता शायद आपको अच्छी लगती होगी ?"

"हाँ, लगती है।"

"मुझे अच्छी नहीं लगती। लिहाजा मुझे माफ कीजियेगा। मेरे एक विशेष कवि हैं, उनकी रचना इतनी अच्छी है कि बहुत कम आदमी पढ़ते हैं। यहाँ तक कि उन्हे कोई इतना भी सम्मान नहीं देता कि समालोचनामें ही दो-चार खरी-खोटी सुना दे। जी चाहता है कि आज मैं उसीमेंसे कुछ कहूँ ?"

"आप इतना डर क्यों रहे हैं ?"

"इस विषयमें मेरा अनुभव शोचनीय है। कविवरकी निन्दा करनेसे आपलोग जातसे निकाल देती हैं, और कोई उससे बचकर चुपचाप निकल जाना चाहता है तो उसके लिए कठोर भाषाकी सृष्टि होती है। संसारमें, सिर्फ इसी बातपर कि जो मुझे अच्छा लगता है वह दूसरे किसी को क्यों नहीं अच्छा लगता, इतनी खूनखराबी होती है जिसका ठिकाना नहीं।"

"मुझसे खूनखराबीका कोई डर नहीं। अपनी रुचिके लिए मैं पराई रुचिके समर्थनकी भीख नहीं मागती।"

"यह आपने खूब कही! तो फिर निर्भय होकर शुरु करता हूँ—

रे अपरिचित, हाथ तेरे
हैं मुठीमें बन्द मेरे,
कैसे छुड़ायेगा बता,
जब तक न मैं पहचानता ?

कवि हरगिज छोड़नेवाला नहीं। देखा, कितनी जबरदस्त ताकत है? रचनाका पौरुष देखा आपने?

जाग उठेगी तू आँसुओंकी धारमें,
पहचानेगी आपको अपने ही सारमें।
टूटेंगे बन्धन सब
कगारू मुक्त तुझसे जब, होगी मेरी मुक्ति तब।

ठीक ऐसीकी ऐसी तान आपको नामजद लेखकोंमें नहीं मिलनेकी। सूर्यमण्डलमें इसे आप आगका तूफान समझिये। यह सिर्फ 'लिरिक' नहीं, निष्ठुर जीवन-तत्त्व है।'

इतना कहकर वह लावण्यके मुहकी ओर एकटक देखने लगा; बोलता गया—

"हे अपरिचित बन्धु, मेरे समय अब कब आयगा,
दिन गया, सन्ध्या हुई, सब यों ही चला जायगा।
अचानक सब बन्धन तोड़
बाधाओंसे बद कर होड़
निर्भय हू, जीवनका भय गया भाग,
अपने परिचयकी तू जला आग,
चढ़ाकर उसमें जीवन अपना
करूँगा सार्थक सपना।"

कविता पूरी हो भी न पाई कि अमितने चटसे लावण्यका हाथ धर दबाया। लावण्यने अपना हाथ नहीं छुड़ाया। वह अमितके मुहकी ओर देखने लगी, कुछ बोली नहीं।

इसके बाद फिर किसीको कोई बात कहनेकी जरूरत ही नहीं हुई। लावण्य अपनी घड़ीकी तरफ देखना भी भूल गई।

७

घटकई

अमित योगमायाके पास आकर बोला— "मौसीजी, घटकई करने आया हूँ। विदा देते वक्त कजूसी न कीजियेगा।"

"पसन्द आ जाय तब तो ! पहले नाम-धाम विवरण तो बखानो ?"

अमितने कहा—"नामसे वरकी कीमत नहीं आंकी जा सकती।"

"तब तो घटक-विदाईके हिसाबमेंसे कुछ काट-छांट करनी पड़ेगी मालूम होता है।"

"यह आपने बेजा बात कही। नाम जिसका बड़ा होता है उसकी दुनिया घरमे कम और बाहर ज्यादा होती है। घरके मन-माफिक चलनेमें उसका जो समय लगता है उससे कहीं ज्यादा समय उसे बाहरके मन-माफिक चलनेमें देना पड़ता है। उस आदमीका बहुत कम अंश ही स्त्रीके हिस्सेमें आता है ; पूरे ब्याहके लिए उतना काफी नहीं। नामी आदमीका ब्याह स्वल्प-विवाह है, बहु-विवाहकी तरह ही गर्हित है वह।"

"अच्छा, नाम कम ही सही, पर रूप ?"

"बतानेको जी नहीं चाहता, कहीं अत्युक्ति न कर बैठूं।"

"अत्युक्तिके जोरसे ही शायद बाजारमें चलाना है ?"

"वर चुननेमें सिर्फ दो बातोंपर लक्ष्य रखना चाहिए ; नामके द्वारा घरसे और रूपके द्वारा बधूसे कहीं वर आगे न बढ़ जाय।"

"अच्छा, नाम और रूपको जाने दो, बाकीका ?"

"बाकी जो कुछ रहा, कुल मिलाकर उसे पदार्थ* कहा जा सकता है। सो वह अपदार्थ तो नहीं है।"

---

* 'पदार्थ'=सार, योग्य। 'अपदार्थ'=सारहीन, आयोग्य। यह 'गलामें प्रयुक्त अर्थ है।

"बुद्धि ?"

"लोग जिससे उसे बुद्धिमान समझकर सहसा भ्रममें आ सकें, इतनी बुद्धि उसमें है।"

"विद्या ?"

"स्वय न्युटनके समान। वह जानता है कि ज्ञान-समुद्रके किनारेसे उसने सिर्फ छोटे-छोटे ककड़ बीने हैं। उनकी तरह वह हिम्मतके साथ कह नहीं सकता, इस डरसे कि कहीं चटसे लोग विश्वास न कर बैठें।"

"वरकी योग्यताकी फेहरिस्त तो कुछ छोटी ही मालूम होती है।"

"अन्नपूर्णाकी पूर्णता प्रकट करनेके लिए ही तो शिवने अपनेको भिखारी कबूल किया था, इसमें जरा भी शर्म नहीं।"

"तो फिर परिचयको और-भी जरा स्पष्ट कर दो।"

"जाना हुआ घर है। वरका नाम है अमितकुमार राय। हँसतीं क्यों हैं मौसीजी ? आप सोचती होंगी, मजाक है ?"

"सो तो मनमे डर है बेटा, कहीं अन्तमे मजाक ही न सावित हो ?"

"यह सन्देह तो वरपर दोषारोप है।"

"बेटा, घर-गृहस्थीको हँसके हलका कर रखना कोई कम क्षमताकी बात नहीं।"

"मौसीजी, देवताओंमें वह क्षमता है, और इसीसे वे विवाहके अयोग्य होते हैं; दमयन्तीने इस बातको समझा था।"

"मेरी लावण्य क्या सचमुच तुम्हे पसन्द आई है ?"

"कैसी परीक्षा चाहती हैं, बताइये ?"

"परीक्षा तो एकमात्र यही है कि तुम निश्चित जान जाओ कि लावण्य तुम्हारे ही हाथमें है।"

"और जरा व्याख्या कर दीजिये।"

"जो रत्न सस्तेमें मिला है उसकी असल कीमत जो जानता है उसको समझूँगी कि जौहरी है।"

"मौसीजी, बातको आप बहुत ज्यादा सूक्ष्म किये दे रही हैं; ऐसा लगता है जैसे किसी छोटी कहानीकी साइकोलॉजीपर सान चढा ली हो। मगर बात असलमें माफी मोटी है, संसारके नियमानुसार एक भद्र पुरुष एक भद्र रमणीसे ब्याह करनेके लिए उन्मत्त हो रहा है। दोष-गुण मिलाकर लड़का काम-चलाऊ है; और लड़कीकी तो बात ही क्या। ऐसी हालतमें साधारण मौसियाँ तो स्वभावके नियमानुसार खुश होकर उसी वक्त आनन्द-लड्डू कूटना शुरू कर देती हैं।"

"डरो मत बेटा, ढेंकीपर पैर पड़ चुका है। मान लो कि लावण्यको तुम पा ही चुके। उसके बाद भी, हाथमे पाकर भी अगर तुम्हारी पानेकी इच्छा प्रबल रह ही जाय, तभी समझूँगी कि तुम लावण्य जैसी लड़कीसे ब्याह करनेके योग्य हो।"

"मैं जो ऐसा आधुनिक हूँ, मुझे भी आपने दंग कर दिया।"

"आधुनिकके क्या लक्षण देखे?"

"देखता हूँ कि बीसवीं सदीकी मौसियाँ लड़कियोंका ब्याह करनेमें भी डरती हैं।"

"इसकी वजह यह है कि पहलेकी शताब्दियोंकी मौसियाँ जिनका ब्याह कराती थीं वे होतीं थीं खेलकी गुड़ियाँ; और अब जो ब्याहकी उम्मेदवार होती हैं मौसियोंका खेलका शौक मिटानेकी तरफ उनका मन ही नहीं जाता।"

"डरिये नहीं आप। पाकर पाना निबटता नहीं, बल्कि उसकी चाहना बढ़ती हो जाती है। लावण्यसे ब्याह करके इसी तत्त्वको सिद्ध कर दिखानेके

लिए हो अमित राय मर्त्यमें अवतीर्ण हुए हैं। नहीं तो, मेरी मोटर-गाड़ी अचेतन वस्तु होनेपर भी अ-स्थान और अ-समयमें ऐसी अनहोनी अद्भुत घटना क्यों कर डालती ?"

"बेटा, विवाह-योग्य उमरका सुर अभी तक तुम्हारी बातचीतमें आया नहीं है, अन्तमें सब-कुछ किया-कराया बाल-विवाहमें परिणत न हो जाय।"

"मौसीजी, मेरे मनकी स्वकीय एक स्पेसिफिक ग्रैविटी (आपेक्षिक गुरुत्व) है, उसीकी बदौलत मेरे हृदयकी भारी बातें जबानपर खूब हलकी होकर बहने लगती हैं, पर इससे उनका वजन नहीं घटता।"

योगमाया चली गई भोजनकी व्यवस्थाकी करने। अमित इस कमरेमें उस कमरेमें घूमता फिरा, दर्शनीय कोई दिखाई नहीं दिया। दिखाई दिया यतिशकर। याद आ गई, आज उसे 'एण्टॉनी क्लियोपैट्रा' पढ़ानेकी बात थी। अमितके चेहरेका भाव देखते ही यति समझ गया कि जीवपर दया करके आज उसके लिए चटसे छुट्टी ले लेना आशु कर्तव्य है। उसने कहा—"अमित दादा, अगर कुछ खयाल न करें तो, आज मैं छुट्टी चाहता हूँ, अपर-शिलाग घूमने जाऊँगा।"

अमित पुलकित होकर बोला—"पढ़नेके समय जो छुट्टी लेना नहीं जानते वे पढ़ते ही हैं, पढ़ना हजम नहीं करते। तुम छुट्टी माँगो और मैं कुछ खयाल करूँ, ऐसा असम्भव भय तुम्हें हुआ कैसे ?"

"कल रविवार है, छुट्टी तो है ही, यह सोचकर कहीं तुम—"

"मेरी स्कूल-मास्टरी बुद्धि थोड़े ही है भाई, नियत छुट्टीको तो मैं छुट्टी ही नहीं कहता। जो छुट्टी नियमित है उसका भोग करना और बँधे हुए पशुका शिकार करना एक ही बात है। उससे छुट्टीका रस फीका पड़ जाता है।"

सहसा जिस उत्साहके साथ अमितकुमार छुट्टी-तत्त्वकी व्याख्या करनेमें उन्मत्त हो उठा, उसका मूल कारण अनुमान करके यतिशकरको बड़ा आनन्द आया। उसने कहा—"कई दिनोंसे छुट्टी-तत्त्वके सम्बन्धमें आपके दिमागमें नये-नये भाव पैदा हो रहे हैं। उस दिन भी मुझे उपदेश दिया था। ऐसे ही और कुछ दिन चलता रहा, तो छुट्टी लेनेमें मेरा हाथ सध जायगा।"

"उस दिन क्या उपदेश दिया था ?"

"वताया था कि 'कर्त्तव्य-बुद्धि मनुष्यका एक महान् गुण है। उसकी पुकार होनेपर फिर जरा भी देर करना उचित नहीं।' कहके किताब बन्द कर दी और चटसे बाहर भाग गये। बाहर शायद कहीं किसी अकर्तव्यका आविर्भाव हुआ होगा, मैंने लक्ष्य नहीं किया।"

यतिशकरकी उमर बीसके खानेमें है। अमितके मनमें जो चाचल्य उठ रहा है, उसके अपने मनमें भी उसका आन्दोलन आकर लग रहा है। उसने लावण्यको अब तक शिक्षक-जातीय ही समझ रखा था, पर आज अमितके अनुभवसे ही वह समझ गया है कि वह नारी-जातीय है।

अमितने हँसके कहा—"कार्य सामने आते ही तैयार हो जाना चाहिए, इस उपदेशका बाजार-भाव ज्यादा है, अकबरी मुहरकी तरह ; पर उसके दूसरी ओर खुदा रहना चाहिए कि अकार्य सामने आते ही उसे वीरोंकी भाँति मान लेना चाहिए।"

"आपकी वीरताका परिचय आजकल अकसर मिला करता है।"

यतिशङ्करकी पीठ ठोकते हुए अमितने कहा—"जरूरी कामकी एक ही वारमें वलि देनेकी पवित्र अष्टमी तिथि तुम्हारी जीवन-पंजिकामें एक दिन जब आयेगी तब देवीकी पूजामें देर मत करना भाई, उसके बाद विजय-दशमी आनेमें देर नहीं लगती।"

थतिशकर चला गया। इधर अकर्तव्य-बुद्धि भी जाग्रत थी, पर जिसका आश्रय पाकर अकार्य दिखाई देता है उसका कहीं पता ही नहीं। अमित घर छोड़के बाहर चल दिया।

फूलोंसे आच्छन्न गुलाबकी लता है; एक तरफ सूर्यमुखीकी भीड़ है और दूसरी तरफ चौखूटे काठके टबमें चन्द्रमल्लिका सुशोभित हैं। घासके ढालू खेतके ऊपरकी तरफ एक बड़ा-भारी युकैलिप्टसका पेड़ है। उसीके तनेसे पीठ लगाये और सामने पैर फैलाये बैठी है लावण्य। मटमैले रंगका अलवान ओढे है, और पावोंपर पड़ रही है सवेरेकी घाम। गोदमें रूमालपर कुछ रोटीके टुकडे और कुछ फोडे हुए अखरोट रखे हैं। आज सवेरेका वक्त उसने जीव-सेवामें बिताना चाहा था, पर उसे वह भूल गई। अमित उसके पास जाकर खड़ा हुआ। लावण्यने सिर उठाके उसके मुँहकी तरफ देखा और चुप रही। चेहरा उसका मृदु मुसकानसे खिल उठा। अमितने ठीक आमने-सामने बैठकर कहा—"एक शुभ सवाद है। मौसीजीकी सम्मत्ति मिल गई।"

लावण्यने इसका कोई उत्तर न देकर पास ही खड़े-हुए एक निष्फल पीचके पेड़की तरफ अखरोटका एक टुकड़ा फेंक दिया। देखते-देखते उसके तनेसे एक गिलहरी उतर आई। यह जीव लावण्यके मुष्टिभिक्षुकोंमें से एक है।

अमितने कहा—"अगर ऐतराज न करो तो तुम्हारे नामको जरा छाँट देना चाहता हूँ।"

"छाँट दो।"

"तुम्हे 'वन्य' कहा करूंगा मैं।"

"वन्य?"

"नहीं-नहीं, यह नाम तो शायद तुम्हारा बदनाम हो गया। ऐसा नाम तो मुझ ही को शोभा देगा। तुम्हे कहा करूंगा 'वन्या', क्यों ठीक है न ?"

"सो ही कहना ; पर अपनी मौसीजीके सामने नहीं।"

"हरगिज नहीं। ये सब नाम बीजमन्त्रके समान हैं ; और-किसीके सामने प्रकट थोड़े ही किये जाते हैं। यह तो सिर्फ मेरे मुँह और तुम्हारे कानों तक ही सीमित रहेगा।"

"अच्छी बात है।"

"मेरे लिए भी ऐसे ही एक गैर-सरकारी नामकी जरूरत है। सोच रहा हूँ 'ब्रह्मपुत्र' कैसा रहेगा ? वन्या (बाढ़) सहसा आई और उसके दोनों तटों को बहा ले गई।"

"नाम हमेशा बुलाने-करनेके लिए वजनमे भारी होगा।"

"बात तो ठीक है। कुली बुलाना पड़ेगा पुकारनेके लिए। तो तुम्हीं बताओ कोई नाम ? वह तुम्हारी ही सृष्टि होगी।"

"अच्छा, मैं भी तुम्हारा नाम जरा हलका कर दूंगी। तुम्हे कहा करूंगी मैं 'मीता'।"

"वाह, वाह ! पदावलीमें इसीका एक दूसरा नाम है 'पीतम'। वन्या, मैं सोच रहा हू, अपने उसी नामसे अगर सबके सामने मुझे बुलाओ तो हर्ज क्या है ?"

"डर लगता है, कहीं एक कानका धन पाँच कानमे जाकर सस्ता न हो जाय।"

"बात तो झूठ नहीं है। दोके कानोंमें जो एक है, पाँचके कानोंमें वह भग्नाश बन जायगा। —वन्या !"

"क्या मीता ?"

"तुम्हारे नामपर अगर कविता बनाऊं तो कौन-सी तुक बैठाऊंगा जानती हो ?—अनन्या।"

"उसके मानी क्या होंगे ?"

"मानी होंगे, तुम जो हो वही हो, और कुछ भी नहीं हो, अनन्या।"

"यह कोई विशेष आश्चर्यकी बात तो नहीं हुई ?"

"कहती क्या हो ? बहुत आश्चर्यकी बात है। अकस्मात् एक-एक आदमी ऐसा दिखाई देता है कि उसे देखते ही चौंककर कह उठते हैं कि यह मुझ ही जैसा है, और पाँच जनों जैसा नहीं है। इसी बातको मैं कवितामे कहूंगा—

'हे मेरी वन्या, तुम हो अनन्या,
अपने स्वरूपमें आप ही धन्या।'

"तुम क्या कविता बनाया करोगे क्या ?"

"जरूर। किसकी मजाल है जो उसकी गति रोक सके !"

"ऐसे डेसपरेट* क्यों हो उठे ?"

"कारण बताता हूं। नींद न आनेसे जैसे इधर-उधर करवट बदलना पड़ता है उसी तरह कल रातको ढाई बजे तक सिर्फ 'ऑक्सफोर्ड बुक ऑफ् वर्सेज' के पन्ने उलटता रहा हूं। प्रेमकी कविता ढूंढे ही न मिली, पहले वे पाँवसे आ-आ लगती थीं। स्पष्ट ही समझमें आने लगा कि मैं लिखूंगा, इसके लिए संसार आज प्रतीक्षा कर रहा है।"

इतना कहकर उसने लावण्यका बाँया हाथ अपने दोनों हाथोंके बीचमें दबा लिया, बोला—"हाथ तो घिर गये, कलम काहेसे पकड़ूंगा ? तुकका

* निराश होकर जान हथेलीपर रखके आगे बढ़ना।

सबसे अच्छा मेल है हाथों-हाथ मिलना। यह जो तुम्हारी उंगलियां मेरी उंगलियोंसे बातें कर रही हैं, आज तक कोई भी कवि ऐसे सहज-स्वभाविक ढगसे कुछ लिख ही नहीं सका।"

"तुम्हें कुछ भी जल्दी पसन्द नहीं आता, इसीसे तुमसे इतना डरती हू, मीता।"

"पर मेरी बात समझ देखो जरा। रामचन्द्रने सीताका सत्य जांचना चाहा था बाहरकी आगमें, इसीसे सीताको वे खो बैठे। कविताका सत्य परखा जाता है भीतरकी अग्नि-परीक्षासे, वह आग हृदयकी होती है। जिसके हृदयमें-वह आग नहीं, वह पारखेगा किस चोजसे ? उसे पांच आदमियोंके मुहकी बात मान लेनी पड़ती है, और बहुधा वह होती है दुर्मुखकी बात। मेरे मनमे आज आग जल रही है, उस आगके भीतरसे मैं अपनी पुरानी पढ़ी हुई चीजें सब फिरसे पढ लेता हूं, कितना थोडा टिका वह। सब जलकर खाक हुआ जा रहा है। कवियोंके शोरगुलके बीच खडे होकर आज मुझे कहना पड़ा, तुमलोग इतना चिल्लाके बात मत करो, असल बात आहिस्तेसे कह दो—

For God's sake, hold your tongue
and let me love"

बहुत देर तक दोनों चुपचाप बैठे रहे। फिर, एक समय लावण्यका हाथ उठाकर अमितने उसे अपने मुंहपर फेर लिया। बोला—"जरा सोच देखो वन्या, आज सवेरे ठीक इसी क्षणमें सारे ससारमें कितने असंख्य लोगोंने मनचाही चीज चाही होगी, पर मिली कितने थोड़ोंको ? मैं उन्हीं थोड़े आदमियोंमेंसे एक हू। सारी पृथिवीपर एकमात्र तुम

ही उस सौभाग्यवान् आदमीको देख सकीं शिलाग पहाड़के एक कोनेमें, इस युकैलिप्टस-पेड़के नीचे। ससारकी परमाश्चर्यजनक घटनाएँ परम नम्र होती हैं, आखोंके आगे आना ही नहीं चाहतीं। और मजा यह कि तुम्हारा वह तारिणी तलापात्र कलकत्तेकी गोलदिग्धीसे लेकर नोआखाली चटगाँव तक चिल्ला-चिल्लाके आसमानमें घूसा तान-तानकर बाँकी पॉलिटिक्सकी कोरी आवाज फैला आया, और वही जबरदस्त फजूलकी खबर इस देशकी सर्वप्रधान खबर हो उठी! कौन जाने शायद वही अच्छी बात हो!"

"कौनसी अच्छी बात है?"

"अच्छी बात यही कि ससारकी असल चीजें हाट-बाजारमे ही चलती फिरती रहती हैं, फिर भी फालतू आदमियोंकी आँखोंकी ठोकर खा-खाके मरती नहीं। उनका गम्भीर परिचय विश्व-जगतकी अन्तरग नाड़ियोंके साथ होता है। अच्छा, वन्या, मै तो बकता ही जा रहा हूँ, तुम चुपचाप बैठी-बैठी क्या सोच रही हो बताओ तो?"

लावण्य आँखें झुकाये बैठी रही, उसने कुछ जवाब नहीं दिया।

अमितने कहा—"तुम्हारा यह चुप रहना कुछ ऐसा-सा लगता है जैसे बगैर तनखा दिये ही उसने मेरी सब बातोंको बरखास्त कर दिया हो।"

लावण्यने आखें झुकाये हुए ही कहा—"तुम्हारी बातें सुनके मुझे डर लगता है, मीता।"

"डर किस बातका?"

"तुम मुझसे क्या चाहते हो, और मैं भला तुम्हे कितना दे सकूंगी, मेरी कुछ समझमें नहीं आता।"

"कुछ सोचे-समझे विना ही तुम दे सकती हो, इसीमें तो तुम्हारे दानकी कीमत है।"

"तुमने जब कहा कि मौसीजीने सम्मति दे दी है तब मेरा मन कैसा-तो हो उठा। मालूम हुआ कि अब मेरे पकड़े जानेके दिन आ गये।"

"पकड़ाई तो देनी ही होगी।"

"मीता, तुम्हारी रुचि, तुम्हारी बुद्धि मुझसे बहुत ऊपर है। तुम्हारे साथ एकसग राह चलते हुए एक दिन तुमसे मैं इतनी पिछड़ जाऊँगी कि तब फिर तुम मुझे मुड़के बुलाओगे भी नहीं। उस दिन मैं तुम्हे जरा भी दोष न दूँगी। नहीं-नहीं, कुछ कहो मत, पहले मेरी बात सुन लो। तुमसे मैं बिनती करती हूँ, मुझसे तुम ब्याह करना मत चाहो। ब्याह करके फिर गाँठ खोलने लगोगे तो उसमें और भी उलझन पड़ जायगी। तुम्हारे पाससे जो कुछ मुझे मिला है वह मेरे लिए काफी है, जीवनके अन्त तक उससे मेरी गुजर हो जायगी। मगर तुम अपनेको बहलाओ मत।"

"वन्या, तुम आजकी उदारतामें कलकी कजूसीकी आशका क्यों कर रही हो?"

"मीता, तुम्हींने मुझे सच कहनेका जोर दिया है। आज तुमसे जो मैं कह रही हूँ, तुम खुद भी उसे भीतर-ही-भीतर समझते हो। मानना नहीं चाहते, इसलिए कि जो रस अभी भोग रहे हो उसमे कहीं कोई खामी न आ जाय। तुम तो घर-गृहस्थी खोलनेवाले जीव हो नहीं, तुम सिर्फ रुचिकी तृष्णा मिटानेके लिए फिरा करते हो; इसीसे साहित्य ही साहित्यमें तुम विहार किया करते हो; मेरे पास भी तुम इसीलिए आये हो। कह दूं ठीक बात? ब्याहको तुम मन-ही-मन जानते हो, जैसा कि तुम हमेशा ही कहा करते हो, 'वलगर'। यह बड़ी रेस्पेक्टब्ल चीज है, यह शास्त्रकी दुहाई देनेवाले उन्हीं लोगोंकी पाली हुई चीज है जो सम्पत्तिके

साथ सहधर्मिणीको मिलाकर खूब मोटे तकियाका सहारा लेकर बैठा करते हैं।"

"वन्या, तुम आश्चर्यजनक नरम सुरमें आश्चर्यजनक कड़ी बात कह सकती हो!"

"मीता, प्रेमके जोरसे हमेशा कठिन रह सकूं, यही चाहती हूँ, तुम्हें बहलानेके लिए जरा भी धोखा न दू। तुम जैसे आज हो, ठीक वैसे ही बने रहो, तुम्हारी रुचिमें मैं जितनी अच्छी लगूं उतनी ही लगती रहू, लेकिन तुम जरा भी जिम्मेदारी न लेना, उसीसे मैं खुश रहूँगी।"

"वन्या, तो अब मुझे भी अपनी बात कह लेने दो। कैसे आश्चर्यपूर्ण ढगसे तुमने मेरे चरित्रकी व्याख्या की है, इस बातको लेकर मै बहस नहीं करूँगा। मगर एक जगह तुम जरा गलती कर रही हो। आदमीका चरित्र भी चलता है। घरमे जो उसकी पालतू अवस्था है उसमे उसका एक-तरहका जजीर-बँधा स्थावर परिचय है। उसके बाद जब एक दिन भाग्यके आकस्मिक एक वारसे वह जजीर कट जाती है तब वह जंगलकी ओर भागता है, तब उसकी मूर्ति कुछ और ही होती है।"

"आज तुम उसमेंसे कौनसे हो?"

"जो मेरे हमेशाके साथ नहीं मिलता, वही हूँ आज। इसके पहले बहुत-सी लड़कियोंसे मेरा परिचय हुआ था, समाजकी बनी नहरसे चलकर पक्के घाटपर, रुचिको चिमनी-दार लालटेनके उजालेमें। उसमे देखना-भालना होता है, जानना-पहचानना नहीं होता। तुम खुद ही बताओ न वन्या, तुम्हारे साथ क्या मेरा वैसा ही परिचय है?"

लावण्य चुप रही।

अमितने कहने लगा—'बाहरसे दो नक्षत्र एक दूसरेको प्रणाम

करते हुए और प्रदक्षिणा देते हुए चलते हैं, तरीका बहुत ही शोभन और निरापद मालूम होता है, उसमें मानो उनको रुचिका आकर्षण होता है, पर हृदयका मेल नहीं होता'। सहसा अगर मौतका धक्का लगता है तो बुझ जाती है दोनों ताराओंकी लालटेन, दोनोंमें एक हो उठनेकी आग जल उठती है। वह आग जलने लगी है, अमित राय बदल गया है। मनुष्यका इतिहास ही ऐसा है। उसे देखकर मालूम होता है वह धाराबाहिक है, पर असलमे वह आकस्मिककी गुथी माला है। संसार या सृष्टिकी गति उसी आकस्मिकके धक्के खा-खाकर, वेग पा-पाकर चलती है और युग-युगान्तर तक झपतालकी लयमें आगे बढती जाती है। तुमने मेरा ताल बदल दिया है वन्या, उसी तालसे ही तो तुम्हारे स्वरमें मेरा स्वर गुँथ गया है।"

लावण्यकी आँखोंके पलक भींग आये। फिर भी वह यह बात सोचे बेना न रह सकी कि 'अमितके मनका गठन साहित्यिक ढंगका है, प्रत्येक अभिज्ञतामें उसके मुंहसे बातोंका फुहारा छूट निकलता है। वही उसके जीवनकी फसल है, उसीसे उसे आनन्द मिलता है। मेरी जरूरत उसे इसीलिए है। ये सब बातें उसके मनमे बरफ होकर जमी हुई हैं, वह खुद उनका भार अनुभव कर रहा है, पर आहट नही सुन पाता; मुझे गरमी पहुँचाकर उसे गलाकर झरा देना होगा।'

दोनों बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहे। लावण्यने सहसा एक समय प्रश्न किया—"अच्छा, मीता, तुम्हें क्या ऐसा नहीं मालूम होता कि जिस दिन ताजमहल बनकर तैयार हुआ था उस दिन मुमताजकी मृत्युके लिए शाहजहाँ खुश हुए थे? उनके स्वप्नको अमर करनेके लिए उस मृत्युकी जरूरत थी। वह मरना ही मुमताजका सबसे बड़ा प्रेमका दान था।

ताजमहलमें शाहजहाँका शोक प्रकट नहीं हुआ, बल्कि उसमें उनके आनन्दने अपना रूप पाया है।"

अमितने कहा—"अपनी बातोंसे तुम क्षण क्षणमे मुझे चौंकाती चली जा रही हो वन्या। तुम जरूर कवि हो।"

"मैं नहीं चाहती कवि होना।"

"क्यों नहीं चाहतीं?"

"जीवनके उत्तापसे सिर्फ बातोंका प्रदीप जलानेको मेरी तबीयत नहीं होती। दुनियामें जिन्हें उत्सव-सभा सजानेका हुक्म मिला है, बातें उनके लिए अच्छी हैं। मेरे जीवनका ताप जीवनके कामके लिए ही है।"

"वन्या, तुम बातको अस्वीकार कर रही हो। तुम नहीं जानतीं कि तुम्हारी बात मुझे किस कदर जगा देती है। तुम कैसे जानोगी कि तुम क्या कह रही हो और उस कहनेके मानी क्या हैं? फिर मालूम होता है निवारण चक्रवर्तीको बुलाना पड़ेगा। उसका नाम सुन-सुनके तुम विरक्त हो गई होगी। पर क्या करूँ बताओ, वही मेरे मनकी बातोंका भण्डारी है। निवारण अभी तक अपने लिए आप पुराना नहीं हुआ है; वह प्रत्येक बार ही जो कविता लिखता है वह उसकी पहली कविता है। उस दिन उसकी कापी उलटने-पलटनेमें कुछ दिन पहलेकी एक कविता हाथ लग गई। 'झरना' पर है कविता। कैसे तो उसे खबर लग गई कि शिलाग पहाड़पर आकर मेरा झरना मुझे मिल गया है। वह लिखता है—

झरना, तुम्हारे स्फटिक जलकी
स्वच्छ धारा,
देखते हैं अपनेको उसमे
सूर्य तारा।

अगर मैं खुद भी लिखता तो तुम्हारा मैं इससे बढ़कर स्पष्ट वर्णन नहीं कर सकता था। तुम्हारे मनके अन्दर ऐसी एक स्वच्छता है कि उसमें आकाशका सम्पूर्ण प्रकाश सहजमें ही प्रतिबिम्बित हो उठता है। तुम्हारे सब-कुछपर छाये हुए उस उजालेको मैं देख रहा हूँ, तुम्हारे चेहरेपर, तुम्हारी हँसीमें, तुम्हारी बातचीतमे, तुम्हारे चुपचाप बैठनेमे, तुम्हारे चलने-फिरनेमें।

अपनी उस धारामे मेरी भी छायाको
किनारे कहीं थोड़ी-सी जगह दे खिलाना तुम,
खेलके बहाने क्या
बनके तुम्हारे मीत, होंगे न खिलौना हम ?
मेरी उस छायामे मिला देना घोलकर
कोयल-सी मीठी धुन,
अपनी तुम वाणी भी देना साथ वही जो
तुम्हारी हो चिरन्तन।

तुम झरना हो। अपने जीवन-स्रोतमें सिर्फ बहती ही चली जा रही हो सो बात नहीं, तुम्हारे चलनेके साथ-साथ तुम्हारा बोलना भी चालू है। ससारके जिन कठोर और अचल पत्थरोंपरसे तुम चलती हो वे भी तुम्हारे सघातसे एकस्वरमें बज उठते हैं।

मेरी छाया, हँसी तुम्हारी,
दोनोंकी है एक छवि,
छिपाकर मनमे आज
उन्मत्त है मेरा कवि।
कदम-कदमपर चमकती तू चाँदनी-सी,
चलती उन्मादिनी-सी,

भाषा है तेरी हो मेरे रोमकूपमें,
अपनी ही वाणीका देख रहा रूप मैं।
तेरे ही प्रवाहसे जागा है मेरा मन,
देखा जो अपनेको, जान लिया अपनापन।"

लावण्यने जरा उदास हँसी हँसकर कहा—"मुझमें उजालेकी चमक और चलनेकी ध्वनि चाहे कितनी ही क्यों न हो, तुम्हारी छाया आखिर छाया ही रह जायगी, उस छायाको मैं पकड़के नहीं रख सकती।"

अमितने कहा—"पर एक दिन शायद देख लोगी कि और कुछ अगर न भी रहे, तो भी, मेरा 'वाणी-रूप' तो रह ही गया है।"

लावण्यने हँसकर कहा—"कहाँ? निवारण चक्रवर्तीकी कापीमें?"

"दुनियामें आश्चर्य कुछ भी नहीं। मेरे मनके नीचेके स्तरमें जो धारा बह रही है वह कैसे निवारणके फव्वारेसे निकलने लगती है?"

"तब तो शायद, किसी एक दिन निवारण चक्रवर्तीके फव्वारेमें ही तुम्हारे मनको पा जाऊँगी, और कहीं नहीं।"

इतनेमें भीतरसे बुलावा आ गया। खाना तैयार है।

अमित भीतर जाते-जाते सोचने लगा कि 'बुद्धिके उजालेमें लावण्य सब-कुछ साफ जान लेना चाहती है। आदमी स्वभावत: जहाँ अपनेको बहलाये रखना चाहता है, उससे वहाँ अपनेको बगैर बहलाये नहीं बनता। लावण्यने जो बात कही है उसका वह प्रतिवाद नहीं कर सका। अन्तरात्मा की गम्भीर उपलब्धिको बाहर प्रकट करना ही पड़ता है, कोई करता है जीवनमें और कोई करता है अपनी रचनामें, जीवनको छूते-हुए, और साथ ही उससे हटते-हुए नदी जैसे बराबर तीरसे हटती हुई चलती है, वैसे ही। मैं क्या हमेशा रचनाका स्रोत लेकर ही जीवनसे

हट-हट जाऊँगा ? क्या यहींपर स्त्री-पुरुषमें भेद है ? पुरुष अपनी सारी शक्तिको सार्थक करता है सृष्टि करनेमें, वह सृष्टि अपनेको आगे बढ़ानेके लिए ही अपनेको पद-पदमें भूलती रहती है। स्त्री अपनी सारी शक्तिका प्रयोग करती है रक्षा करनेमें, प्राचीनकी रक्षा करनेके लिए ही नूतन सृष्टिको वह बाधा देती है। रक्षाके प्रति सृष्टि निस्ठुर होती है, और सृष्टिके प्रति रक्षा विघ्न है। ऐसा क्यों हुआ ? एक-न-एक जगह ये दोनों परस्परको आघात करेंगी ही। जहाँ बहुत ज्यादा मेल होता है वहीं जबरदस्त विरुद्धता रहती है। इसीसे सोचता हूँ कि हमारा सबसे बढ़कर जो पावना है, वह मिलन नहीं बल्कि मुक्ति है।'

यह बात सोचनेमें अमितको चोट पहुँची, पर उसका मन इस बातको अस्वीकार न कर सका।

८

लावण्य-तर्क

योगमायाने कहा—"बेटी लावण्य, तुमने ठीक समझ लिया है न ?"

"हाँ, ठीक समझ लिया है, मा।"

"अमित बड़ा चंचल है, मैं इस बातको मानती हूँ। इसीलिए उससे इतना स्नेह करती हूँ। देखो न, वह कैसा विश्रृंखल है। हाथसे मानो सब-कुछ गिरा जा रहा हो।

लावण्यने जरा हँसकर कहा—"उन्हें सब-कुछ अगर पकड़के रखना होता, उनके हाथसे सब-कुछ अगर खिसक न जाता, तभी उनके लिए आफत होती। उनका नियम है कि या तो वे पाकर भी न पायेंगे, या फिर

पाते ही खो देंगे। जिसे पायेंगे उसे रखना ही होगा, यह उनकी प्रकृतिके साथ मेल नहीं खाता।"

"सच कहती हूँ बिटिया, उसका लड़कपन मुझे बहुत अच्छा लगता है।"

"यह माका धर्म है। लड़कपनमें जो-कुछ जिम्मेदारी है, सब माकी है। और लड़केके लिए जो भी कुछ है, सब खेल है। पर मुझे क्यों कह रही हो जिम्मेदारी लेनेको ?"

"देखती नहीं हो लावण्य, उसका ऐसा ऊधमी मन, आजकल बहुत-कुछ शान्त-सा हो गया है। देखके मुझे बड़ी ममता होती है। कुछ भी कहो, वह तुमसे प्रेम करता है।"

"सो तो करते हैं।"

"तो फिर फिकरकी क्या बात है ?"

"मा, उनका जो स्वभाव है, उसपर मैं जरा भी अत्याचार नहीं करना चाहती।"

"मैं तो यही जानती हूँ लावण्य, प्रेम जरा-कुछ अत्याचार चाहता है, अत्याचार करता भी है।"

"मा, उस अत्याचारके लिए क्षेत्र है, पर स्वभावके ऊपर पीड़न सह्य नहीं होता। साहित्यमें प्रेमकी पुस्तकें मैंने जितनी ही पढ़ी हैं, उतनी ही यह बात बार-बार मेरे मनमें आई है कि प्रेमकी ट्राजिडी वहीं होती है जहाँ परस्पर एक दूसरेको स्वतन्त्र समझकर आदमी सन्तुष्ट नहीं रह सका है; अपनी इच्छाको दूसरेकी इच्छा बनानेके लिए जहाँ जुल्म होता है, वहाँ यही मनमें आती है कि अपने मनके माफिक बदलकर दूसरेकी सृष्टि करूँ।"

"सो तो बेटी, दो जने मिलकर जहाँ घर-गृहस्थी बनाते हैं वहाँ परस्पर एक दूसरेको थोड़ी-बहुत सृष्टि किये बिना काम ही नहीं चलता। जहाँ प्रेम है वहाँ सृष्टि आसान होती है, जहाँ नहीं है वहाँ हथौड़ी चलातेमें, जिसे तुम ट्राजिडी कहती हो वही होता है।"

"घर-गृहस्थी बनानेके लिए जो आदमी तैयार किये गये हैं, उनकी बात छोड़ दो। वे तो मिट्टीके आदमी होते हैं, दुनियादारीके प्रतिदिनके दबावसे ही उनका गढना-पीटना अपने-आप ही होता रहता है। मगर जो आदमी कतई मिट्टीका आदमी नहीं, वह अपनी स्वाधीनता किसी भी तरह छोड नहीं सकता ; जो नारी इस वातको नहीं समझती वह जितना ही दावा करती है, उतनी ही वंचित रहती है , इसी तरह जो पुरुष यह नहीं समझता वह भी खींचातानी करके असल आदमीको खो बैठता है। मेरा विश्वास है कि अधिकाश क्षेत्रोंमें, हम जिसे पाना कहती हैं वह, और कुछ नहीं, जैसे हथकड़ी हाथको पाती है वैसा ही समझो।"

"तुम क्या करना चाहती हो, लावण्य ?"

"मैं ब्याह करके उन्हें दुःख देना नहीं चाहती। ब्याह सबके लिए नहीं होता। जानती हो मा, जिनका मन वहमी है वे आदमीको कुछ-कुछ बाद दे-देकर चुन-चुन लेते हैं। लेकिन ब्याहके जालमे फँसकर तो स्त्री-पुरुष बहुत ज्यादा नजदीक आ जाते हैं, बीचमें व्यवधान ही नहीं रहता ; और तब बिलकुल पूरे आदमीसे ही कारबार करना पड़ता है, बिलकुल पास रहकर। कोई भी एक अश वहाँ ढका नहीं रह सकता।"

"लावण्य, तुम अपनेको पहचानती नहीं। तुम्हे लेनेमें कुछ बाद देकर लेनेकी जरूरत नहीं होगी।"

"पर वे तो मुझे नहीं चाहते ;—मैं जो साधारण स्त्री हूँ, घरकी

-नारी, उसे उन्होंने देखा हो ऐसा तो मुझे नहीं मालूम होता। ज्यों -ही मैंने उनके मनको छुआ है त्यों ही उनका मन अविराम और असीम -बातें कर उठा है। उन बातोंसे वे बराबर मुझे गढ़ते चले गये हैं। उनका मन अगर थक गया, बातें अगर खतम हो गईं, तो उस नीरवतामें पकड़ाई देगी यह निहायत साधारण लड़की, जो उनकी अपनी सृष्टि नहीं। ब्याह करनेसे आदमीको स्वीकार कर लेना पड़ता है, तब फिर गढ़ने-बनानेका अवकाश नहीं मिलता।"

"तुम्हें ऐसा मालूम होता है क्या कि अमित तुम जैसी लड़कीको भी पूरी तरह स्वीकार न कर सकेगा?"

"स्वभाव अगर बदल जाय तो कर सकेंगे। लेकिन बदलने क्यों -लगा? मैं तो ऐसा नहीं चाहती।"

"तुम क्या चाहती हो?"

'जितने दिन बन सके, न-हो-तो उनकी बातोंके साथ, उनके मनके खेलके साथ घुल-मिलकर स्वप्न बनकर रहूँगी। और, उसे स्वप्न ही क्यों कहूँ? वह मेरा एक विशेष जन्म है, एक विशेष रूप है, क्योंकि एक विशेष जगतमें वह सत्य होकर दिखाई दिया है। भले ही वह कुसवारीसे निकली हुई दो-चार दिनकी एक रंगीन तितली ही हो, उसमें क्या दोष है, -दुनियामें तितली और-किसीसे कुछ कम सत्य हो ऐसी तो कोई बात नहीं, -भले ही वह सूर्योदयके प्रकाशमें दिखाई दे और सूर्यास्तके उजालेमें मर जाय, -इससे क्या? सिर्फ इतना ही देखना है कि उतना समय व्यर्थ न हो जाय।"

"इतना तो समझ लिया कि तुम अमितके पास क्षण-भरकी मायाके -रूपमें ही रहीं। मगर खुद? तुम भी क्या ब्याह करना नहीं चाहती? -तुम्हारे लिए अमित भी क्या माया है?"

लावण्य चुप बैठी रही, कुछ जवाब नहीं दिया।

योगमाया कहने लगी—"तुम जब बहस करती हो तब समझ जाती हूँ कि तुम बहुत-किताब-पढ़ी-हुई लड़की हो, तुम्हारी तरह मैं सोच भी नहीं सकती और न बातचीत ही कर सकती हूँ; सिर्फ इतना ही नहीं, हो सकता है कि कामके मौकेपर भी इतनी कड़ी नहीं रह सकूँ। लेकिन बहसकी सँधमेंसे भी तो मैंने तुम्हें देखा है बेटी। उस दिन रातके लगभग बारह बजे होंगे, देखा कि तुम्हारे कमरेमें बत्ती जल रही है, भीतर जाकर देखा कि अपनी टेबिलपर झुककर दोनों हाथोंपर मुँह रखके तुम रो रही हो। उस दिनकी वह लड़की तो फिलॉसॉफी-पढ़ी लड़की नहीं थी। एक बार सोचा कि सान्त्वना दूँ, फिर सोचा कि सभी लड़कियोंको रोनेके दिनोंमें रो लेना चाहिए, उसे दबाने जाना व्यर्थ है। इस बातको मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि तुम सृष्टि करना नहीं चाहती, प्रेम करना चाहती हो। आखिर, हृदय-मनसे सेवा न कर सकीं तो तुम जीओगी कैसे? इसीसे तो कहती हूँ, उसे अपने पास बिना पाये तुम्हारा काम नहीं चल सकता। 'ब्याह न करूँगी'—सहसा ऐसा कोई प्रण न कर बैठना बेटी। एक बार तुम्हारे मनमें कोई जिद चढ़ जाय तो फिर तुम्हें सीधा नहीं किया जा सकता, डर तो मुझे इसी बातका है।"

लावण्य कुछ बोली नहीं, सिर झुकाये गोदपर साड़ीका पल्ला रखके उसे दबा-दबाकर अनावश्यक तह करने लगी। योगमायाने कहा—"तुम्हें देखके मुझे बहुत दफे ऐसा लगा है कि ज्यादा पढ़-पढ़के, ज्यादा सोच-सोचके तुम्हारा मन बहुत ज्यादा सूक्ष्म हो गया है; तुमलोगोंने भीतर-ही-भीतर जो-सब भाव गढ़ लिये हैं हम लोगोंकी दुनिया उसके लायक नहीं। हमलोगोंके समयमें मनके जो प्रकाश अदृश्य थे, तुमलोग

आज मानो उन्हे भी छुटकारा देना नहीं चाहतीं। वे आज देहके मोटे आवरणको भेदकर देहको मानो अगोचर किये दे रहे हैं। हमलोगोंके जमानेमें मनके मोटे-मोटे भावोंको लेकर दुनियामें काफी सुख-दुःख था; और समस्याएँ भी कुछ कम न थीं। पर आज तुमलोगोंने उन्हे इतना बढा दिया है कि सहज-स्वाभाविक अब कुछ रहा ही नहीं।"

लावण्य जरा हँस दी। अभी उस दिनकी बात है कि अमित अदृश्य प्रकाशकी बातें योगमायाको समझा रहा था, उसीसे यह युक्ति उनके दिमागमे आई है, यह भी तो सूक्ष्म है, योगमायाकी मा ये बातें इस तरह नहीं समझती थीं। लावण्यने कहा—"मा कालकी गतिसे मनुष्यका मन जितनी ही स्पष्टतासे सब बातें समझता जायगा, उतनी ही कठोरतासे वह उसके धक्के भी सहने लगेगा। अन्धकारका दुःख असह्य है, क्योंकि वह अस्पष्ट है।"

योगमायाने कहा—"आज मुझे मालूम हो रहा है कि तुम दोनोंकी कभी भेंट ही न होती, तो अच्छा होता।"

"नहीं-नहीं, ऐसा मत कहो। जो हुआ है, उसके सिवा और-कुछ हो सकता था, ऐसा मैं सोच ही नहीं सकती। किसी समय मेरा दृढ विश्वास था कि मैं बिलकुल ही शुष्क हूँ, सिर्फ किताबें पढूँगी और परीक्षा पास करूँगी, इसी तरह मेरा जीवन बीत जायगा। आज अकस्मात् देखा कि मैं भी प्रेम कर सकती हूँ। मेरे जीवनमें भी ऐसी असम्भव बात सम्भव हो गई, यही मेरे लिए काफी है। मालूम होता है अब तक मैं छाया थी, अब सत्य हो गई हूँ। इससे ज्यादा और क्या चाहिए? मुझे ब्याह करनेको न कहना मा।" इतना कहकर लावण्य चौकीसे नीचे उतरकर योगमायाकी गोदमे सिर रखके रोने लगी।

६

घर बदलना

शुरूमें सभीका खयाल था कि अमित पन्द्रह दिनके भीतर कलकत्ता लौट आयेगा। नरेन्द्र मित्रने बड़ी-भारी शर्त बदी थी कि सात दिन भी वहाँ नहीं बीत पायेंगे। एक महीना गया, दूसरा महीना भी गया, लौटनेका नाम ही नहीं। शिलांगके मकानकी मियाद बीत चुकी है; रंगपुरका कोई जमींदार आया और उसपर अपना दखल जमा बैठा। बहुत तलाश करनेके बाद योगमायाके मकानके पास एक घर मिला है। किसी समय वह ग्वाला या मालीका घर था; उसके बाद वह एक क्लर्कके हाथ पड़ा; और तब उसमें गरीबी भद्रताका कुछ ताव लगा। वह क्लर्क भी मर चुका है, उसकी विधवा स्त्री अब उसे किरायेपर उठाती है। दरवाजे-जंगलोंकी कंजूसीके कारण उस घरके अन्दर तेज-मरुत्-व्योम इन तीनों भूतोंका अधिकार संकुचित है, सिर्फ बरसातके दिनोंमें आशातीत प्राचुर्यके साथ सिर्फ अप् अवतीर्ण होता है, अख्यात छिद्र-पथोंसे।

घरकी हालत देखकर योगमाया एक दिन चौंक उठीं। बोलीं—"बेटा, अपने ऊपर यह कैसी परीक्षा कर रहे हो?"

अमितने उत्तर दिया—"उमाकी थी निराहारकी तपस्या; अन्तमें उन्होंने पत्ते खाना भी छोड़ दिया था। मेरी है यह निर-असबाबकी तपस्या; खाट-पलंग और टेबिल-कुरसी छोड़ते-छोड़ते अब लगभग शून्य दीवारपर नौबत आ पहुंची है। उमाकी तपस्या हुई थी हिमालय पर्वतपर, और मेरी हो रही है शिलांग पहाड़पर। उसमें कन्याने माँगा था वर, इसमें वर माँग रहा है कन्या। वहाँ नारद घटक थे, यहाँ

स्वय मौसीजी हैं ; अब अन्त तक अगर किसी कारणसे कालिदास न आ पहुचे, तो लाचार होकर मुझे ही उनका काम यथासम्भव पूरा करना होगा।"

अमितने हँसते हुए ये बातें कहीं ; पर योगमायाके हृदयको चोट पहुँची। वे कहने-ही-वाली थीं कि 'चलो, हमारे ही घर चलके रहे, पर रुक गईं। सोचा कि विधाता एक काण्ड रच रहे हैं, उसमें हमलोगोंका हाथ लगनेसे कहीं असाध्य उलझन न पड़ जाय। उन्होंने अपने यहाँसे थोड़ा-बहुत सामान भेज दिया ; और उसके साथ-साथ इस अभागेपर उनकी करुणा भी दूनी बढ गई। लावण्यसे उन्होंने बार-बार कहा—"बेटी लावण्य, मनको पत्थर न बनाये डालो।"

एक दिन, बहुत जोरकी वर्षाके बाद, योगमाया अमितकी खबर-सुध लेने गईं तो देखा, चार पायेदार एक लचर टेबिलके नीचे कम्बल बिछाकर अमित अकेला बैठा कोई अंग्रेजी-किताब पढ रहा है। कोठरीमें जहाँ-तहाँ बरसातकी बूंदोंका असगत आविर्भाव देखकर टेबिलके नीचे उसने एक गुफा-सी बना ली, और उसके नीचे वह पैर फैलाकर बैठ गया। पहले अपने-आप ही हँस लिया एक चोट, उसके बाद चलने लगी काव्यालोचना। मन दौड़ रहा था योगमायाके घरकी ओर ; पर शरीरने दी बाधा। कारण, जहाँ कोई जरूरत ही नहीं पड़ती उस कलकत्तेमें उसने खरीदी थी एक बहुत कीमती बरसाती, और जहाँ उसकी हमेशा ही जरूरत है वहाँ आते समय वह उसे लाना भूल गया था। एक छतरी साथ थी, उसे सम्भवतः एक दिन किसी सकल्पित गम्य स्थानमें ही छोड़ आया है ; और अगर ऐसा न हुआ हो, तो वह शायद घरकी किसी बूढी दीवारके नीचे कहीं पड़ी होगी। योगमाया घरमें घुसते ही बोलीं—"यह क्या हाल है अमित ?"

अमित झटपट टेबिलके नीचेसे बाहर निकल आया, बोला—"मेरा घर आज असम्बद्ध प्रलापमें उन्मत्त हो रहा है, उसकी दशा मुझसे कुछ ज्यादा अच्छी नहीं है।"

"असम्बद्ध प्रलाप ?"

"यानी, घरके छप्परको करीब-करीब भारतवर्ष कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। उसके अंगों या अंशोंमें परस्परके सम्बन्ध ढीले हो गये हैं। इसीसे ऊपरसे उपद्रव होनेपर चारों तरफ विश्रृंखल अश्रुवर्षण होता रहता है; और बाहरकी तरफसे अगर कहीं आँधीकी झपट लगे तो साँय-साँय करके दीर्घश्वास चलने लगता है। मैंने तो प्रोटेस्ट-स्वरूप सिरके ऊपर एक मच खड़ा कर रखा है, घरकी मिस-गवर्मेण्टके बीच निरुपद्रव होमरूलके दृष्टान्तकी बतौर। पॉलिटिक्सकी एक मूलनीति यहाँ प्रत्यक्ष मौजूद है।"

"मूलनीति क्या है सुनाओ तो सही ?"

"वह यह है कि जो घरवाला घरमें वास नहीं करता वह चाहे जितना बड़ा शक्तिशाली क्यों न हो, उसके शासनकी अपेक्षा जो गरीब अपने बसे हुए घरमें रहता है उसकी गई-बीती व्यवस्था भी अच्छी है।"

आज लावण्यपर योगमायाको बहुत गुस्सा आया। अमितपर उनका स्नेह जितना ही गहराईके साथ बढ़ता जाता है, उतना ही वे अपने मनमें उसकी मूर्ति खूब ऊँची बनाती चली जा रही हैं—'इतनी विद्या, इतनी बुद्धि, इतनी परीक्षाएँ पास, और फिर भी इतना सीधा-सादा मन! इसके साथ बात करनेकी कैसी असाधारण शक्ति है! और अगर चेहरेकी बात कहो, तो मेरी दृष्टिमें तो लावण्यसे इसका चेहरा ज्यादा सुन्दर लगता है। लावण्यका भाग्य अच्छा है, अमितने किसी ग्रहके फेरमें आकर उसे

इस तरह मुग्ध-दृष्टिसे देखा है। ऐसे सोनेके चांद जैसे लड़केको लावण्य इस कदर दुःख दे रही है! चटसे वह कह बैठी कि व्याह नहीं करेगी। जैसे कोई राजराजेश्वरी हो। धनुष तोड़नेकी-सी प्रतिज्ञा! इतना अहंकार सहन कैसे होगा। मुँहजलीको पीछे रो-रोकर मरना होगा।'

एक बार योगमायाने सोचा कि अमितको गाड़ीमें बिठाकर अपने घर ले जायँ। फिर न-जाने क्या सोचकर बोलीं—'जरा बैठो, बेटा, मैं अभी आ रही हूँ।"

घर पहुँचते ही देखा कि लावण्य अपने कमरेमें सोफेपर आरमसे बैठी पैरोंपर दुशाला डाले गोर्कीकी 'मा' पढ रही है। उसकी इस आराम-तलबीको देखकर मन-ही-मन उनका गुस्सा और-भी बढ़ गया।

बोलीं—"चलो जरा घूम आयें।"

उसने कहा—"मा, आज बाहर निकलनेको जी नहीं चाहता।"

योगमाया ठीक समझ न सकीं कि लावण्यने अपने-आपके पाससे भागकर पुस्तककी उस कहानीमें आश्रय लिया है। दोपहर-भर, खानेके बादसे ही, उसके मनमें एक तरहकी अस्थिर पतीक्षा-सी हो रही थी कि कब आवे अमित। बार-बार मन उसका कह रहा है, अब आ ही रहे होंगे। बाहर जोरकी हवा चल रही है, उसके ऊधमसे पाइनके पेड़ छटपटा रहे हैं, और जबरदस्त वर्षासे हालके-पैदा-हुए झरने ऐसे चंचल हो उठे हैं कि मानो अपनी मियादके समयके साथ वे सांस रोकके दौड़ रहे हो। लावण्यके अन्दर एक इच्छा अशान्त हो उठी है, जाने दो, सब बाधाओंको टूट जाने दो, अमितके दोनों हाथ दबाकर वह कह देना चाहती है, 'जन्म जन्मान्तरमें मैं तुम्हारी ही हूँ।' आज कहना उसके लिए सहज है। आज सारा आकाश जान हथेलीपर रखकर हू-हू करके न-जाने क्या कह रहा

है जिसका ठीक नहीं, उसीकी भाषासे आज वन-वनान्तरको भाषा मिल गई है, वर्षा-धारामें बचे-खुचे गिरिशृंग आज आकाशमें कान बिछाये खड़े हैं। इसी तरह कोई सुनने आये लावण्यकी बात, ऐसा ही बड़ा होके स्तब्ध होकर, ऐसे ही उदार मनोयोगके साथ। मगर पहरपर पहर बीतते गये, कोई आया ही नहीं। ठीक मनकी बात कहनेका लग्न जो निकला जा रहा है। इसके बाद जब कोई आयेगा तब बात न सूझेगी, तब संशय आ जायगा मनमें, तब ताण्डव-नृत्योन्मत्त देवताका माभैः रव आकाशमें विलीन हो जायगा। वर्षके बाद वर्ष चुपचाप नीरवतामें बीत जाते हैं, उसके बीच वाणी एक दिन विशेष प्रहरमें सहसा मनुष्यके द्वारपर आकर किवाड़ खटखटाती है। उसी समय किवाड़ खोलनेकी चाभी अगर ढूंढ़े नहीं मिली, तब फिर किसी भी दिन मनकी ठीक बात अकुण्ठित स्वरमें कहनेकी देव-शक्ति नहीं जुट सकती। जिस दिन वह वाणी आती है उस दिन सारी दुनियाको इकट्ठी करके खबर देनेकी इच्छा होती है कि 'सुन लो तुमलोग, मैं प्रेम करती हू। मैं प्रेम करती हू, यह बात अपरिचित-सिन्धु-पारगामी पक्षीकी तरह, कितने दिनोंसे, कितनी दूरसे आ रही है; इसी बातके लिए तो मेरे हृदयमें मेरे इष्टदेवता इतने दिनोंसे प्रतीक्षा कर रहे थे। उस बातने आज मुझे स्पर्श किया है; मेरा सारा जीवन, मेरी सारी दुनिया सत्य हो उठी आज।' तकियामें मुँह छिपाकर लावण्य आज किससे इस तरह कहने लगी, 'सत्य है, सत्य है, इतना सत्य और-कुछ भी नहीं।'

समय चला गया, अतिथि नहीं आया। प्रतीक्षाके भारी बोझसे छातीके भीतर दर्द होने लगा, बरामदेमें जाकर लावण्य थोड़ा-सा भींग आई पानीकी बौछार लगाकर। उसके बाद एक गहरे अवसादने आकर उसके मनको

ढक दिया, एक निविड़ निराशासे ; मालूम हुआ उसके जीवनमें जो-कुछ जलनेको था वह सिर्फ एक बार धप्-से जलकर फिर बुझ गया, सामने कुछ भी नहीं है। अमितको अपने भीतरके सत्यकी दुहाई देकर सम्पूर्ण रूपसे स्वीकार कर लेनेका साहस उसका जाता रहा। बहुत देर तक चुपचाप पड़े रहनेके बाद अन्तमें टेबिलसे किताब उठा ली। कुछ समय लगा उसमें मन लगानेमें, उसके बाद कहानीकी धारामें प्रवेश करके कब अपनेको भूल गई, उसे मालूम भी नहीं पड़ा।

इतनेमें योगमायाने बुलाया घूमने जानेके लिए, उसे उत्साह ही नहीं हुआ।

योगमाया एक कुरसी खींचकर लावण्यके सामने बैठ गई, अपनी दीप्त दृष्टि उसके मुंहपर रखती हुई बोलीं—"सच्ची बात बताओ लावण्य, तुम क्या अमितसे प्रेम करती हो?"

लावण्य जल्दीसे उठके बैठ गई, बोली—"ऐसी बात क्यों पूछ रही हो मा?"

"अगर नहीं प्रेम करती तो उसे साफ-साफ कह क्यों नहीं देती? निष्ठुर हो तुम, अगर नहीं चाहती हो तो उसे पकड़के मत रखो।"

लावण्यके छातीके भीतर उफान-सा उठने लगा, मुंहसे बात नहीं निकली।

"अभी-अभी उसकी जो दशा देख आई हूं, छाती फटती है मेरी तो। ऐसे भिखारीकी तरह किसके लिए यहां पड़ा है वह। उस जैसा लड़का जिसे चाहता है वह कितनी बड़ी भाग्यवती है, सो क्या जरा भी नहीं समझ सकती तुम?"

कोशिश करके रुंधे हुए गलेकी बाधाको दूर करती हुई लावण्य कह उठी—"मेरे प्रेम करनेकी बात पूछ रही हो, मा? मैं तो सोच ही

नहीं सकती कि मुझसे भी ज्यादा प्रेम कर सकती हो ऐसी कोई दुनियामें है। प्रेममें मैं तो मर सकती हूँ। इतने दिनोंसे मैं जो-कुछ थी, उसका सब-कुछ लुप्त हो गया है। अबसे मेरा फिरसे आरम्भ हो रहा है, इस आरम्भका अन्त नहीं है। मेरे अन्दर यह कितना बड़ा आश्चर्य है, सो मैं किसीको कैसे समझाऊँ! और-किसीने क्या इस तरहसे जाना है?"

योगमाया अवाक् हो गई। हमेशासे देखती आई हैं लावण्यमें गहरी शान्ति, इतना बड़ा दुःसह आवेग उसमें कहाँ छिपा था अब तक? उससे धीरेसे बोलीं—"बेटी लावण्य, अपनेको दबा-छिपाकर मत रखो। अमित अँधेरेमें तुम्हें ढूँढता फिर रहा है, पूरी तरह तुम अपनेको उसके आगे जता दो, जरा भी डरना मत। जो प्रकाश तुम्हारे अन्दर जल रहा है वह प्रकाश अगर उसकी दृष्टिमें भी प्रकट हो जाता, तो उसके लिए कोई कमी न रह जाती। चलो बेटी, तुम अभी चलो मेरे साथ।"

दोनों अमितके घर चल दीं।

१०

दूसरी साधना

अमित उस समय भोंजी चौकीपर पुराने अखबारोंकी गद्दी बिछाकर उसपर बैठा था। टेबिलपर एक दस्ता पुलिस्केप कागज रखके उसकी लिखाई चल रही थी। उसी समय उसने अपनी विख्यात आत्म-जीवनी लिखना शुरू किया था। कारण पूछनेपर वह कहता, उसी समय उसका जीवन अकस्मात् उसकी अपनी दृष्टिमें दिखाई दिया नाना रंगोंमें रंगा हुआ, बदलीके दूसरे दिनके सवेरेके शिलांग पहाड़के समान, उसी दिन अपने अस्तित्वका एक मूल्य मिला था उसे, इस बातको प्रकट बगैर किये वह रह

कैसे सकता था ? अमित कहता है, मनुष्यकी मृत्युके बाद उसकी जीवनी लिखी जाती है, इसकी वजह यह कि एक ओर ससारमें वह मरता है और दूसरी ओर मनुष्यके मनमें वह निविड़ होकर जी उठता है। अमितके मनका भाव यह है कि जव वह शिलागमें था तव एक ओर वह मरा था, उसका अतीत मरीचिकाकी तरह विलीन हो गया था, इसी तरह दूसरी ओर वह तीव्र होकर जी उठा था, पीछेके अन्धकारपर उज्ज्वल प्रकाशकी तसवीर प्रकट हो उठी थी। इस प्रकाशके सवादको रख जाना चाहिए। क्योंकि ससारमें वहुत कम आदमियोके भाग्यमे ऐसा वदा होता है, वे जन्मसे लेकर मृत्युकाल तक प्रदोषकी छायामें ही अपना जीवन विता जाते हैं, उस चिमगादड़की तरह जिसने गुफामें अपना घोंसला वनाया है।

उस समय थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही थी, आँधीकी हवा वन्द हो चुकी थी, वादल पतले हो आये थे।

अमित चौकी छोड़कर उठ खड़ा हुआ, बोला—"यह कैसा अन्याय है मौसीजी ?"

"क्यों बेटा, क्या किया मैंने ?"

"मै जो बिलकुल ही तैयार न था। श्रीमती लावण्य अपने मनमें क्या सोचेंगी ?"

"श्रीमती लावण्यको जरा सोचने देना ही तो आवश्यक है। जो जाननेकी बात है उसे पूरी तरह जान लेना अच्छा है। इसमें भी अमितको इतनी आशका क्यों ?"

"श्रीका जो-कुछ ऐश्वर्य है वही श्रीमतीको जतानेका है। और श्रीहीनका जो दैन्य है उसे जाननेके लिए तुम हो, मेरी मौसी।"

"ऐसी भेद-बुद्धि क्यों, बेटा ?"

"अपनी गरजसे ही है। ऐश्वर्यसे ही ऐश्वर्यपर दावा किया जाता है; और अभावसे चाहता हूँ आशीर्वाद। मानव-सभ्यतामें लावण्य देवियोंने जगाया है ऐश्वर्य, और मौसियोंने दिया है आशीर्वाद।"

"देवी और मौसी दोनोंको एकसाथ पाया जा सकता है अमित, अभावको ढकनेकी जरूरत नहीं पड़ती।"

"इसका जवाब कविकी भाषामें देना पड़ेगा। गद्यमे जो-कुछ कहता हूँ, उसे स्पष्ट समझानेके लिए छन्दके भाष्यकी जरूरत पड़ती है। मैथ्यू अर्नल्डने काव्यको बताया है 'क्रिटिसीज्म ऑफ् लाइफ', मै उस वाक्यको जरा सशोधन करके कहना चाहता हूँ 'लाइफ'स् कामेण्टरी इन वर्स'। अतिथि-विशेषको पहले ही से जताये रखता हूँ कि मैं जो पढ रहा हूँ वह किसी कवि-सम्राटका लिखा हुआ नहीं है—

पूर्ण मनकी चाहना हो,
माँगनेकी कामना हो,
माँगो भले ही जा कही,
पर हाथ हों खाली नहीं,
औ आँख हो आली नहीं।

सोच देखियेगा, प्यार हो पूर्णता है, और उसकी जो आकाक्षा है वह दरिद्रका कगलापन हरगिज नहीं। देवता जब भक्तको प्यार करते हैं तभी वे आते हैं भक्तके द्वारपर भीख माँगने।

गलेकी रत्नमाला ही
बनेगी वरमाला जब
बदल लूगा माला तब।

क्या नहीं बिछाओगी
देवीका आसन तुम
राहके किनारे एक
सूनी सूखी धूलपर ?

इसीलिए तो इस समय देवीको जरा हिसाब करके घरमें प्रवेश करनेको कहा था। बिछानेको कुछ है ही नहीं, तो बिछाऊं क्या ? ये भींगे अखबार ? आजकल सम्पादकीय स्याहीके दागोंसे सबसे ज्यादा डरता हूँ। कवि कहते हैं, 'बुलाने-लायक आदमीको तब बुलाता हूँ जब जीवनका प्याला छलक उठता है, उसे तृष्णामें शरीक होनेको नहीं बुलाता।'

चैती हवामें फूल
खिले वन-वीथिकामें,
रखना प्रियतमको बाँध
मधुर प्राण-वाटिकामें,
जलेंगे दीप लाखों तब
अन्धकार भेद कर।

मौसियोंकी गोदमें जीवनके प्रारम्भमें ही मनुष्यकी प्रथम तपस्या होती है दरिद्रताकी, नग्न सन्यासीकी स्नेह-साधना। इस कुटियामें उसीका कठोर आयोजन है। मैंने तो तय कर रखा है कि इस कुटियाका नाम रखूंगा, 'मौसेरा बगला'।"

"बेटा, जीवनकी दूसरी तपस्या ऐश्वर्यकी है, देवीको बाईं तरफ लेकर प्रेम-साधना करना। इस कुटियामें भी तुम्हारी वह साधना भींजे कागजोंके नीचे दबी नहीं रहेगी। 'वर नहीं मिला' कहके अपनेको भुलावा दे रहे हो। पर मनमें निश्चित जानते हो कि मिल चुका है।"

इतना कहकर उन्होंने लावण्यको अमितके बगलमे खड़ा किया और उसका दाहना हाथ अमितके दाहने हाथपर रख दिया। लावण्यके गलेसे सोनेका हार खोलकर उससे दोनोंके हाथ बाँधती हुई बोलीं—"तुम दोनोंका मिलन अक्षय बना रहे।"

अमित और लावण्य दोनोने मिलकर योगमायाके पाँव छुए और पदधूलि सिरसे लगाते हुए प्रणाम किया। योगमायाने कहा—"तुम लोग जरा बैठो, मैं बगीचेसे कुछ फूल ले आऊँ।"

इतना कहकर वे फ़ूल लेने चली गईं। बहुत देर तक दोनो खाटपर आस-पास चुप बैठे रहे। एक समय अमितके मुहकी ओर मुह उठाकर स्वय लावण्यने मृदु स्वरमें कहा—"आज तुम दिन-भर आये क्यों नहीं?"

अमितने उत्तर दिया—"कारण इतना ज्यादा तुच्छ है कि आजके दिन वह बात मुहसे कहनेके लिए साहसकी जरूरत है। इतिहासमें कहीं भी ऐसा लिखा नहीं मिलता कि हाथके नजदीक बरसाती न होनेकी वजहसे बदलीके दिन प्रेमीने प्रियाके पास जाना मुलतबी रखा हो। बल्कि तैरकर अगाध जल-भरी नदी पार करके पहुँचनेकी बात तो लिखी है। मगर जहाँ भीतरका इतिहास है, वहाँके समुद्रमें मैं भी क्या नहीं तैर रहा समझती हो? उस अपारको क्या कभी पार हो सकूंगा?

For we are bound where mariner has not yet dared to go,
And we will risk the ship, ourselves and all.

हम जायेंगे वहीं जहाँ
साहससे
नाविक कोई गया नहीं,

डूबें तो डूब जायें,

हम भी और नाव भी,

इसकी परवाह नहीं।

वन्या, मेरे लिए आज तुम प्रतीक्षामें थीं?"

"हाँ, मीता, वर्षाकी आवाजमें आज दिन-भर तुम्हारे पैरोंकी आहट सुनती रही हूँ। मालूम होता था कि इतने असम्भव दूरसे आ रहे हो तुम, कि जिसका कोई ठीक नहीं। आखिर तो आ पहुँचे मेरे जीवनमें।"

"वन्या, अब तक मेरे जीवनके बीचो-बीच तुम्हें न-जाननेका एक बड़ा-भारी काला गड्डा था। वहीं था सबसे ज्यादा भद्दा। आज वह ऊपर तक भर आया; उसके ऊपर उजाला झलमला रहा है, सम्पूर्ण आकाशकी छाया पड़ती है उसपर, और आज वही जगह हो गई है सबसे बढ़कर सुन्दर। यह जो मैं लगातार बात करता ही चला जा रहा हूँ, यह है उस परिपूर्ण प्राण-सरोवरकी तरंग-ध्वनि, इसे रोक कौन सकता है!"

"मीता, तुम आज दिन-भर क्या कर रहे थे?"

"मनके बीचो-बीच तुम थीं, बिल्कुल निस्तब्ध। तुमसे कुछ कहना चाहता था; पर कहाँ बात थी कहाँ? आकाशसे पानी पड़ रहा था और मैं बराबर यही कह रहा था—बात दो, बात दो!

O what is this?

Mysterious and uncapturable bliss

That I have known, yet seems to be

Simple as breath and easy as a smile,

And older than the earth

कैसा रहस्य यह, कैसा आनन्द-पुज।
जाना है उसे मैंने, पाया नहीं पाकर भी,
फिर भी उस हृदयमे उठती उसास है,
पृथिवी-सा पुराना और स्वभाव-सा सहज वह
सरलताका हास है।

बैठा-बैठा यही करता रहता हू। दूसरोंकी बातको अपनी बात बनाया करता हू। अगर कहीं सुर दे सकता तो सुर लगाकर विद्यापतिके वर्षाके गीतको ज्यों-का-त्यों हड़प कर जाता—

विद्यापति कहे, कैसे गँवाअवि
हरि बिन दिन-रतियाँ।

जिसके बिना चल नहीं सकता, उसे बिना पाये कैसे दिन बीतेंगे, ठीक इस बातका सुर पाऊ कहाँसे? ऊपरकी ओर ताककर कभी कहता हूं, बात दो, शब्द दो; कभी कहता हू, सुर दो। बात लेकर, सुर लेकर देवता उतर भी आते हैं, पर रास्तेमें आदमी पहचाननेमे भूल कर बैठते हैं, खामखाह और-किसीको दे देते हैं। हो सकता है कि तुम्हारे कवि रविको दे बैठे हों।"

लावण्यने हँसके कहा—"कवि रविको जो चाहते हैं, वे भी तुम्हारी तरह इतनी बार-बार उनकी याद नहीं करते।"

"वन्या, आज मैं बहुत ज्यादा बक रहा हू न? मेरे अन्दर बकवासका मॉनसून उतर आया है। वेदर-रिपोर्ट अगर रखो तो देखोगी कि एक-एक दिनमें कै-कै इंच पागलपन करता हू, उसका कोई ठीक नहीं। कलकत्ता होता तो तुम्हें मोटरमें लेकर टायर फाड़ता हुआ सीधा मुरादाबाद भागता। अगर पूँछतीं, मुरादाबाद क्यों, तो उसका कोई कारण नहीं बता सकता।

बाढ जब आती है तब वह बकती है, दौड़ती है, समयको हँसते-हँसते फेनकी तरह बहा ले जाती है।"

इतनेमें योगमाया डाली भरकर सूर्यमुखी फूल ले आई। बोलीं—"बेटी लावण्य, इन फूलोंसे आज तुम अमितको प्रणाम करो।"

यह और-कुछ नहीं, एक अनुष्ठानके भीतरसे हृदयके भीतरकी चीजको बाहर शरीर देनेकी जनानी कोशिश है। देहको बनाकर-खड़ी करनेकी आकाक्षा स्त्रियोंके रक्त-मासमें भरी पड़ी है।

आज किसी एक समय अमितने लावण्यके कानमे कहा—"वन्या, मैं तुम्हें एक अगूठी पहनाना चाहता हू।"

लावण्यने कहा—'क्या जरूरत है, मीता ?"

"तुमने जो मुझे अपना यह हाथ दिया है वह कितना दिया है, सो मैं सोचके खतम नहीं कर पाता। कवियोंने प्रियाके मुहका ही वर्णन किया है। पर हाथोमे हृदयका कितना इशारा है; प्रेमका जो-भी कुछ लाड़-प्यार, जो-भी कुछ सेवा, हृदयका जितना भी दरद और जितनी भी अनिर्वचनीय भाषा है, वह सब तो इन्हीं हाथोंमे है। मेरी अगूठी तुम्हारी उगलीको लपेटे रहेगी, मेरे मुहकी एक छोटी-सी बातकी तरह, वह बात सिर्फ इतनी ही कि 'पाया है'। मेरी यह बात सोनेकी भाषामें माणिककी भाषामें तुम्हारे हाथमें बनी रहेगी।"

लावण्यने कहा—"अच्छा, ऐसा ही करो।"

"कलकत्तासे मॅगाऊगा, बताओ कौन-सा पत्थर तुम्हें पसन्द है ?"

"मैं कोई भी पत्थर नहीं चाहती, एक मोती होनेसे ही चल जायगा।"

"अच्छा, वही ठीक है। मै भी मोती पसन्द करता हू।"

मिलन-तत्त्व

तय हो गया, आगामी अगहन महीनेमे इनका ब्याह होगा। योगमाया कलकत्ता जाकर सब तैयारियाँ करेंगी।

लावण्यने अमितसे कहा—"तुम्हारी कलकत्ता जानेकी मियाद तो बहुत दिन हुए खतम हो चुकी है। अनिश्चितके बन्धनमे बँधे हुए तुम्हारे दिन बीत रहे थे। अब छुट्टी है। बिना किसी सन्देहके चले जाओ। ब्याहसे पहले अब हम दोनोंकी भेंट न होगी।"

"इतना कड़ा शासन क्यों भला?"

"उस दिन जिस सहज आनन्दकी बात कही थी तुमने, उसे सहज बनाये रखनेके लिए।"

"यह तो बिलकुल ही गम्भीर ज्ञानकी बात हुई। उस दिन तुम्हें मैंने कवि समझकर सन्देह किया था, आज सन्देह करता हूँ कि तुम दार्शनिक हो। खूब कहा! सहजको सहज बनाये रखनेके लिए कठोर होना पड़ता है। छन्दको सहज करना हो तो यतिको ठीक जगहपर कसके रखना होगा। लोभ ज्यादा है, इसीसे जीवनके काव्यमे कहीं भी यति देनेको जी नहीं चाहता; और, छन्द टूटकर जीवन गीत-हीन बन्धन हो जाता है। अच्छा, कल हो चला जाऊंगा, एकदम अकस्मात् इन भरे-पूरे दिनोंके बीचसे। ऐसा लगेगा जैसे 'मेघनाद-वध' काव्यकी वह चौंककर खड़ी हो जानेवाली पंक्ति—

चला जब गया यमपुरको
अकालमे!

शिलागसे मान लो कि चला गया, पर पत्रामेंसे अगहनका महीना तो फुद्-से भाग नहीं जायगा। कलकत्ता जाकर क्या करूँगा जानती हो?

"क्या करोगे?"

"मौसीजी जब तक ब्याहके दिनोंकी तैयारियाँ करेंगी, तब तक मुझे कर लेना पड़ेगा उसके बादके दिनोंके लिए आयोजन। लोग इस बातको भूल जाते हैं कि दाम्पत्य एक आर्ट है, प्रतिदिन उसकी नये-नये ढगसे रचना करते ही रहना चाहिए। याद है बन्या, 'रघुवंश'में अज महराजाने इन्दुमतीका कैसा वर्णन किया है?"

लावण्यने कहा—"प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।"

अमित कहने लगा—"वह ललित कलाविधि तो दाम्पत्यकी ही है। अधिकांश बर्बर ब्याह ही को समझ लेते हैं मिलन, इसीसे उसके बादसे मिलनकी इतनी अवहेलना होने लगती है।"

"मिलनका आर्ट तुम्हारे मनमें कैसा है, समझा दो। अगर मुझे शिष्या करना चाहते हो, तो आज ही उसका पहला पाठ शुरू हो जाय।"

"अच्छा तो सुनो। इच्छाकृत बाधासे ही कवि छन्दकी सृष्टि करता है। मिलनको भी सुन्दर करना पड़ता है इच्छाकृत बाधासे। कीमती चीजको इतनी सस्ती कर देना कि चाहते ही मिल जाय, अपनेको ही ठगना है। क्योंकि कड़ी कीमत देनेका आनन्द भी कुछ कम नहीं होता।"

"कीमतका कुछ हिसाब भी तो सुनूं?"

"ठहरो, उसके पहले मेरे मनमें जो तसवीर बस रही है उसे बता दूँ। गंगाका तट है, बगीचा है डायमण्डहरबरकी तरफ। एक छोटे-से स्टीम-लचपर बैठकर वहाँसे दो घण्टेमें कलकत्तासे आना-जाना हो सकता है।"

"इसमें कलकत्ताकी क्या जरूरत आ पड़ी ?"

"अभी कोई जरूरत नही सो तुम जानती हो। जाता जरूर हूं बार-लाइब्रेरीमें ; पर रोजगार नहीं करता, शतरंज खेला करता हू। अटर्नियोंने समझ लिया है कि कामकी कोई गर्ज नही, इसीसे उधर ध्यान नहीं है। आपसमें फैसलेका कोई मुकदमा होता है तो वे उसका ब्रीफ मुझे देते हैं, उससे ज्यादा और कुछ नहीं देते। पर, ब्याहके बाद ही दिखा दूंगा कि काम किसे कहते हैं, जीविकाकी आवश्यकताके लिए नहीं, जीवनकी आवश्यकताके लिए। आमके भीतर रहती है गुठली, वह न तो मीठी है, न नरम है और न खानेकी चीज है, पर वह कठोर ही सारे आमका आश्रय है, उसीपर वह आकार पाता है। कलकत्ता पथरीली गुठली है, और, उसकी किस लिए जरूरत है, अब समझ गई होगी ? मधुरके भीतर एक कठिनको रखनेके लिए।"

"समझ गई। तब तो मेरे लिए भी जरूरत है। मुझे भी कलकत्ता जाना होगा,—दससे पाँच तक।"

"बुराई क्या है ? लेकिन मुहल्ला घूमने नहीं, काम करनेके लिए।"

"कौनसा काम, बताओ ? बगैर तनखाका ?"

"नहीं नहीं, बिना तनखाका काम न तो काम है, न छुट्टी, बारह आने धोखाधड़ी है। चाहो तो तुम लड़कियोंके कालेजमें प्रोफेसरी कर सकती हो।"

"अच्छा, चाहूंगी। उसके बाद ?"

"स्पष्ट देख रहा हूँ, गंगाका किनारा है, नीचेसे उठा है एक जटाओंवाला बहुत पुराना बड़का पेड। धनपति जब गंगाकी राहसे सिंहल गया था तब शायद उसने इसी बड़से नाव बाँधकर पेड तले रसोई

चढाई थी। उसके दक्षिणी किनारेपर काई-लगा पक्का घाट है, जिसमें दरारें पड गई हैं, और कुछ-कुछ धँस भी गया है। उस घाटमें हरे और सफेद रंगकी हमारी हलकी-सी नाव बँधी हुई है। उसकी नीली पताकापर सफेद अक्षरोंमें नाम लिखा हुआ है। क्या नाम है तुम बताओ?"

"बताऊँ? मिताई।"

"ठीक नाम हुआ है, मिताई। मैंने सोचा था सागरी, मनमे जरा गर्व भी हुआ था। पर तुम्हारे आगे हार माननी पड़ी। बगीचेके बीचसे एक पतली खाड़ी निकल गई है, गगाके हृदय-स्पन्दनके भीरतसे। उसके उस पार तुम्हारा घर है और इस पार मेरा।"

"रोज ही क्या तुम तैरकर पार हुआ करोगे, और खिड़कीमें मैं अपना दीआ जला रखा करूगी?"

"तैरूगा मन-ही-मन; काठके एक पुलके ऊपरसे। तुम्हारे घरका नाम है 'मानसी', मेरे घरका कोई नाम तुम्हें रखना होगा।"

"दीपक।"

"नाम बहुत ठीक रहा। नामके लायक एक दीप अपने घरकी चोटी पर बिठा दूगा, मिलनकी सन्ध्यामे उसमें जलेगी लाल बत्ती, और विच्छेदकी रातमें नीली। कलकत्तासे वापस आकर रोज तुम्हारी तरफसे एक चिट्ठीकी आशा करूगा। ऐसा होना चाहिए कि वह चिट्ठी मिल भी जाय, न भी मिले। रातके आठ बजे तक अगर न मिली, तो दुर्भाग्यको अभिशाप देकर बर्ट्रण्ड रसलकी लॉजिक पढनेकी कोशिश करूगा। हमारा नियम होगा कि तुम्हारे घर अनाहूत हरगिज न जा सकूगा।"

"और तुम्हारे घर में?"

"ठीक एक ही नियम हो तो अच्छा है, लेकिन बीच-बीचमें नियमका व्यतिक्रम हो तो वह असह्य न होगा।"

"नियमका व्यतिक्रम ही अगर नियम न हो उठे तो तुम्हारे घरकी क्या दशा होगी, जरा सोच देखो ; बल्कि यह अच्छा होगा कि बुरका ओढके जाया करूंगी।"

"सो भले ही हो, पर मुझे निमन्त्रणकी चिट्ठी चाहिए ही। उस चिट्ठीमें और कुछ लिखनेकी जरूरत नहीं, सिर्फ किसी एक कवितासे दो-चार लाइन मात्र लिख देना काफी है।"

"और तुम्हारी तरफसे निमन्त्रण बन्द रहेगा क्यों? मैं छेक दी जाऊंगी?"

"तुम्हें महीनेमें एक दिन निमन्त्रण मिलेगा, पूर्णिमाकी रातको। चौदह तिथियोंकी खण्डता जिस दिन चरम पूर्ण हो उठेगी।"

"अब तुम अपनी प्रियशिष्याको एक चिट्ठीका नमूना दो।"

"अच्छी बात है।"—जेबमेंसे एक नोटबुक निकालकर उसका पन्ना फाड़कर वह लिखने लगा—

"Blow gently over my garden
Wind of the southern sea
In the hour my love cometh
And calleth me

चूमके जाना तुम मेरी वन - भूमिको
दखिनो सागरके ओ मन्द समीरण,
जिस शुभ क्षणमें मेरे आयेंगे प्रियतम,
बुलायेंगे नाम ले मुझे अकारण।"

लावण्यने कागज लौटाया नहीं।

अमितने कहा—"अब तुम अपनी चिट्ठीका नमूना दो, देखूं तुम्हारी शिक्षा कहाँ तक आगे बढ़ी?"

लावण्य एक कागजके टुकड़ेपर लिखने जा रही थी, अमितने कहा—"नहीं, मेरी इस नोटबुकमें लिखो।"

लावण्यने लिख दिया—

"मीता, त्वमसि मम जीवन, त्वमसि मम भूषणं,
त्वमसि मम भव-जलधि रत्नम्।"

अमितने नोटबुकको जेबमें रखते हुए कहा—"आश्चर्यकी बात है, मैंने लिखी है नारीके मुहकी बात, और तुमने लिखी है पुरुषकी! असगत कुछ भी नहीं हुआ। सेंवरकी लकड़ी हो या मौरसिरीकी, जब जलती है तो आगका चेहरा एकसा ही होता है।"

लावण्य बोली—"निमत्रण तो दे दिया, उसके बाद?"

अमितने कहा—"सध्या-तारा उदित हुए हैं, ज्वार आई है गगामें, झाऊके पेड़ोंके ऊपरसे हवा निकल गई सांय-सांय करके, बूढ़े बरगदकी जड़से गगाका स्रोत टकराने लगा। तुम्हारे घरके पीछे पद्म-सरोवर है, वहाँ पिछली खिड़कीके निर्जन घाटपर नहा-धोकर तुम जूड़ा बांध रही हो। तुम्हारे अलग-अलग दिनके कपड़े अलग-अलग रगके होंगे। मैं सोचता-सोचता जाऊंगा, आजकी सध्याका क्या रग होगा? मिलनकी जगहका भी कोई ठीक न रहेगा, किसी दिन चम्पाके नीचेवाले चबूतरेपर, किसी दिन छतपर, किसी दिन गगा-किनारेके खुले बरडेमें मिलन हुआ करेगा। मैं गगामें नहाकर सफेद मलमलकी धोती और चादर पहनूंगा, पांवोंमें होगी हाथी-दांतकी कामदार खड़ाऊँ। जाकर

देखूगा, तुम गलीचा बिछाये बैठो हो, सामने चांदीकी रकाबीमें मोटी फूलोंकी माला रखो है, चन्दनकी कटोरीमें चन्दन रखा है, एक कोनेमे जल रही है धूप। पूजाकी छुट्टियोंमें कम-से-कम दो महीनेके लिए दोनों जने घूमने जायेंगे। लेकिन दोनों दो जगह। तुम अगर जाओगी पहाड़पर, तो मैं जाऊगा समुद्रकी तरफ। यह है हमारे दाम्पत्य-राज्यको नियमावलो, तुम्हारे सामने पेश कर दी गई है। अब तुम्हारी क्या राय है, सो बताओ?"

"मान लेनेको राजी हू?"

'मान लेना और मनमे लेना, दोनोंमे जो फर्क है वन्या?"

"तुम्हे जिसकी जरूरत है मुझे उसकी जरूरत न भी रहे, तो भी मै उसमे आपत्ति न करूगी।"

"जरूरत नही है तुम्हे?"

"नही। तुम मेरे चाहे जितने ही पास क्यों न रहो, फिर भी मुझसे वहुत दूर हो। किसो नियमके द्वारा उस दूरीको कायम रखना मेरे लिए बाहुल्य मात्र है। लेकिन मैं जानती हू, मेरे अन्दर ऐसी कोई भी चोज नहीं जो तुम्हारी नजदीककी दृष्टिको विना लज्जाके सह सके, इसीलिए दाम्पत्यमे हमारे दो तटोंपर दो महल हो जाना मेरे लिए निरापद है।"

अमितने चौकीसे उठके खड़े होकर कहा—"तुमसे मै हार नहीं मान सकता वन्या, जाने दो मेरे बगीचेको। कलकत्तासे बाहर मै एक कदम भो न हिलूगा। निरजनके आफिसवाले मकानमें ऊपरकी मजिल पचहत्तर रुपये महीनेमें किरायेपर ले लूगा। वहां रहोगी तुम, और रहूगा मैं। चित्ताकाशमें पास और दूरका भेद नहीं है। साढे-तीन हाथ चौड़े बिस्तरपर बाई तरफ तुम्हारा महल रहेगा 'मानसो', और दाहनी

तरफ मेरा महल रहेगा 'दीपक'। कमरेकी पूरबवाली दीवारसे सटा हुआ एक ड्रॉवरवाला आईना रहेगा, उसमें तुम भी मुह देखोगी और मैं भी। पश्चिमकी तरफ रहेगी किताबोंकी आलमारी, पीठसे वह धूप रोकेगी और सामनेकी तरफ उसमे रहेगी दो पाठकोंकी एकमात्र सर्क्युलेटिंग-लाइब्रेरी। कमरेके उत्तरकी तरफ एक सोफा रहेगा, उसके बाई तरफ थोड़ी-सी जगह छोड़कर एक किनारेसे मैं बैठूगा, और अपनी अलगनीकी ओटमे तुम खड़ी होगी, दो हाथ दूर। निमन्त्रणकी चिट्ठी मैं ऊपरकी ओर उठाऊगा कांपते हुए हाथसे, उसमे लिखा रहेगा—

छतपर बहती रहना चुपके-चुपके
अरी ओ दखिनी पवन,
प्रेयसीके साथ हो जब मधुमय
चार आँखें, एक चितवन।

यह क्या सुननेमें खराब मालूम हो रही है, बन्या ?"

"जरा भी नहीं मीता। पर यह संग्रह कहांसे की गई है ?"

"अपने एक मित्र नीलमाधवकी कापीसे। उसकी भावी प्रेयसी तब अनिश्चित थी। उसीको लक्ष्य करके उसने इस अंग्रेजी कविताको कलकत्ताके ढांचेमें ढाला था, साथमें मैं भी शरीक हुआ था। इकोनॉमिक्समे एम० ए० पास करके पन्द्रह हजार रुपये नगद और अस्सी तोले सोनेके गहनेका दहेज लेकर हजरत नव-वधूको घर लाये, चार आखोंकी एक चितवन हुई, दखिनी हवा भी बहती रही, पर बेचारा उस कविताका व्यवहार न कर सका। अब उसे अपने साझेदारको इस काव्यका सर्वाधिकारी समर्पण करनेमे कोई बाधा नहीं।"

"तुम्हारी भी छतपर दखिनी हवा चलेगी, पर नव-वधू क्या हमेशा नव-वधू ही बनी रहेगी ?"

टेबिलपर जोरका मुक्का जमाता हुआ अमित ऊँचे स्वरमे बोल उठा—"रहेगी, रहेगी, रहेगी।"

योगमाया बगलके कमरेमेंसे दौड़ी आई ; और पूछने लगीं—"क्या रहेगी, अमित ? मेरी टेबिल तो मालूम होता है नहीं रहेगी।"

"दुनियामें जो भी कुछ टिकाऊ चीज हैं, सब रहेगी। ससारमें नव-वधू दुर्लभ है, पर लाखोमे एक अगर दैवमे मिल जाय तो वह हमेशा नव-वधू ही रहेगी।"

"एक दृष्टान्त तो बताओ देखूं ?"

"एक दिन समय आयेगा, तब दिखा दूँगा।"

"शायद उसके आनेमे अभी कुछ देर है, तब तक चलो खा लो।"

१२

शेष संध्या

भोजनके बाद अमितने कहा—"कलकत्ता जा रहा हू मौसीजी। मेरे आत्मीय-स्वजन सब सन्देह कर रहे हैं कि मैं खसिया हो गया हूँ।"

"आत्मीय-स्वजन लोग जानते हैं क्या कि कहाँ-कहाँ तुम्हारा इतना परिवर्तन सम्भव है ?"

"खूब जानते हैं, नहीं तो फिर आत्मीय-स्वजन किस बातके ? इसके मानी यह नहीं कि सिर्फ बातोंका ही जमा-खर्च हो या खसिया बनना हो। जैसा परिवर्तन आज मेरा हुआ है, यह क्या जाति-परिवर्तन है, यह तो युग-परिवर्तन है ; इसके बीचमें एक कल्पान्त पड़ा हुआ है।

प्रजापति जाग उठे हैं मेरे अन्दर, एक नई सृष्टिमें। मौसीजी, अनुमति दो, लावण्यको लेकर आज एक बार घूम आऊँ। जानेके पहले शिलाग पहाड़को आज हम युगल-नमस्कार कर जाना चाहते हैं।"

योगमायाने सम्मति दे दी। कुछ दूर जाते-जाते दोनोंके हाथ मिल गये। इतने पास-पास चलने लगे कि बदनसे बदन सटने लगा। निर्जन सड़कके किनारे नीचेकी ओर घना जगल है। उस जगलमें एक जगह जरा-कुछ खुला हुआ है, आकाशको वहां पहाड़की नजरबन्दीसे जरा छुट्टी मिली है, और उसकी अजलि भरी हुई है सूर्यास्तकी शेष आभासे। वहींपर पश्चिमकी ओर मुंह करके दोनों खड़े हो गये। अमितने लावण्यको अपनी छातीकी ओर खींचते हुए उसका मुँह ऊपरको उठाया। लावण्यकी आंखें आधी मिंची हुई हैं, और उनके किनारोंसे आंसू ढलक रहे हैं। आकाशमें सुनहले रगपर चुन्नी और पन्नोंकी रोशनीकी आभा पड़ती और विला जाती है। बीच-बीचमें पतले बादलोंकी सँधमेंसे गम्भीर और नील आकाश चमक उठता है, मालूम होता है उसके भीतरसे जहां देह नहीं, सिर्फ आनन्द ही आनन्द है, उस अमर्त्य-जगतकी अव्यक्त ध्वनि आ रही हो। धीरे-धीरे अँधेरा हो आया, और उस खुले आकाशने, रातके फूलकी तरह, अपनी नाना रगोंकी पखड़ियोंको बन्द कर लिया।

अमितकी छातीके पाससे लावण्यने मृदुस्वरसे कहा—"चलो अब।"

कैसा-तो उसे लगा कि यहीं समाप्त करना अच्छा है।

अमित इस बातको समझ गया, कुछ बोला नहीं। लावण्यका मुँह एक बार छातीसे दबाकर वह धीरे-धीरे घरकी ओर चलने लगा।

बोला—"कल सवेरे ही मुझे शिलाग छोड़ना पड़ेगा, उसके पहले मैं मिलने न आऊँगा।"

"क्यों नहीं आओगे ?"

"आज ठीक जगहपर हम लोगोंका शिलाग-अध्याय समाप्त हुआ है; इति प्रथमः सर्ग हम लोगोंका सखी-सखा स्वर्ग।"

लावण्य कुछ न बोली, अमितका हाथ पकड़े चलने लगी। हृदयके भीतर आनन्द है, और उसके साथ-साथ एक क्रन्दन स्तब्ध हुआ बैठा है। ऐसा लगा कि जीवनमे अचिन्तनीय अब कभी भी इतनी निविड़तासे इतने नजदीक नही मिलेगा। परम क्षणमे शुभदृष्टि हुई, इसके बाद क्या अब सुहाग-रात होगी ? रह गया सिर्फ मिलन और विदाका एकत्र मिश्रित एक अन्तिम नमस्कार। बड़ा जी चाहने लगा कि अमितको वह अभी अन्तिम नमस्कार करके कहे कि 'तुमने मुझे धन्य किया।' पर ऐसा हो न सका।

घरके पास पहुँचते ही अमितने कहा—"वन्या, आज तुम अपनी अन्तिम बात एक कवितामे कहो तो उसे मनमे रखके ले जाना आसान होगा। तुम्हे खुद जो याद हो, ऐसी कोई चीज सुनाओ।"

लावण्यने जरा-सा सोच लिया, फिर बोली—

"नहीं दे सका सुख मैं तुमको, नैवेद्य मुक्तिका छोड़ चला,
रजनीके अवसान-शुभ्रमे कुछ बचा नहीं, है रुद्ध गला,
नहीं प्रार्थना, नहीं दीनता, पल-पलका वह अभिमान नहीं,
नहीं दीनताका रोना है, वह गर्व-भरी मुसकान नहीं,
नहीं देखना पीछेका है। आगे है मुक्तीकी डाली,
भर दिया आज मैंने उसको अपनी मृत्यूकी दे लाली।"

"वन्या, बहुत बुरा किया तुमने। आजके दिन अपने मुंहसे तुम्हें

ऐसी बात नहीं कहनी थी, हरगिज नहीं। क्यों तुम्हें इसकी याद आई ? तुम अपनी यह कविता इसी वक्त वापस ले लो।"

"डर किस बातका मीता! यह आगमें जला प्रेम है, यह आनन्दका दावा नहीं करता, यह खुद मुक्त होनेके कारण ही मुक्ति देता है, इसके पीछे क्लान्ति नहीं आती, म्लानता नहीं आती, इससे ज्यादा और-कुछ क्या देनेको है।"

"लेकिन मैं जानना चाहता हूँ कि यह कविता तुम्हें मिली कहाँसे ?"

"रवीन्द्रनाथकी है।"

"उनकी तो किसी पुस्तकमें यह देखी नहीं!"

"पुस्तकमें नहीं निकली।"

"तो फिर कहाँसे मिली ?"

"एक लड़का था, वह मेरे पिताको गुरु समझके भक्ति करता था, पिताजीने उसे दी थी ज्ञानकी खुराक; और इस दिशामें उसका हृदय भी था तापस। समय मिलते ही वह जाया करता था रवीन्द्रनाथके पास। कभी-कभी उनकी कापीमेंसे मुष्टि-भिक्षा ले आया करता था वह।"

"और लाकर तुम्हारे चरणोंमें उँड़ेल दिया करता था।"

"इतना साहस उसमें नहीं था। कहीं-न-कहीं रख देता था, किसी कदर मेरी निगाह पड़ जाय और मैं उठा लूँ।"

"उसपर दया की थी ?"

"करनेका मौका ही नहीं आया; मन-ही-मन प्रार्थना करती हूँ ईश्वर उसपर दया करें।"

"जो कविता तुमने अभी सुनाई, मैं खूब समझ रहा हूँ, यह उसी अभागेकी मनकी बात है।"

"हाँ, उसकी बात तो है ही।"

"तो तुम्हें आज ही क्यों उसकी बात याद आई ?"

"कैसे कहूँ ? उस कविताके साथ और एक कविताका टुकड़ा था, वह भी आज क्यों मुझे याद आ रही है, ठीक कह नहीं सकती।

ओ सुन्दर, तुम आँखें भर-भर
लाये हो क्या आँसू केवल।
छातीमें है भरा हुआ क्या
दुस्सह केवल ही होमानल।
विकसित होकर विच्छेद-व्यथा
दुख देती है प्रेमी मनको,
जल रही आग जो भीतर है,
क्या जला रही तेरे तनको।
मनका दुख साँसें ले-लेकर
क्या फूटेगा अब फूटेगा।
मोहित मनका आवेश-बाँध
क्या टूटेगा अब टूटेगा।"

अमितने लावण्यका हाथ मसककर कहा—"वन्या, वह लड़का आज हमारे बीचमें क्यों आ पड़ा ? ईर्षा करनेसे मैं घृणा करता हूँ, यह मेरी ईर्षा नहीं, पर कैसा-तो एक तरहका भय आ रहा है मनमें। बताओ, उसकी दी हुई कविताएँ आज ही क्यों तुम्हें इस तरह याद आ रही हैं ?"

"एक दिन वह जब हमारे घरसे विदा लेकर चला गया, उसके बाद, जहाँ बैठकर वह लिखा करता था उस डेस्कमें ये दोनों कविताएँ मिली थीं।

इसके साथ रवीन्द्रनाथकी और-भी बहुत-सी अप्रकाशित कविताएँ थीं, लगभग पूरी भरी हुई कापी। आज तुमसे विदा ले रही हूँ, शायद इसीलिए विदाकी कविता याद आ रही है।"

"वह विदा और यह विदा क्या एक ही बात है?"

"कैसे कहूं? परन्तु इस बहसकी तो कोई जरूरत नहीं। जो कविता मुझे अच्छी लगी है वही तुम्हे सुनाई है, हो सकता है कि इसके सिवा और-कोई कारण इसमे न हो।"

"वन्या, रवीन्द्रनाथकी रचनाओंको जब तक लोग बिलकुल भूल नहीं जाते तब तक उनकी अच्छी रचनाएँ वास्तव रूपमें प्रस्फुटित न हो सकेंगी। इसीलिए, मैं उनकी कविताएँ काममें ही नहीं लाता। दल या गुटके लोगोंको अच्छा लगना उस कुहरेकी तरह है जो आकाशपर अपने भींगे हाथ लगा-लगाकर उसके प्रकाशको मैला कर डालता है।"

"देखो मीता, स्त्रियाँ अपनी अच्छी-लगनेवाली आदरकी वस्तुको अपने अन्त पुरमें सिर्फ अपनी ही बनाकर छिपा रखती हैं, भीड़के आदमियोंकी कोई खबर ही नहीं रखतीं। वे जितना दाम दे सकती हैं सब दे डालती हैं, अन्य पाँच-पचीसके साथ मिलाकर बाजार-भाव जाँचनेका उनका मन ही नहीं होता।"

"तो मेरे लिए भी आशा है, वन्या! मैं अपने बाजार-भावकी छोटी-सी एक छाप छिपाकर तुम्हारे अपनोंकी तरह एक मार्का लेकर छाती फुलाये घूमता फिरूंगा।"

"घर आ गया, मीता। अब तुम्हारे मुहसे तुम्हारे पथान्तकी भी कविता सुन लूं?"

"गुस्सा मत होना वन्या, मैं रवीन्द्रनाथकी कविता नहीं सुना सकता।"

"गुस्सा क्यों होने लगी।"

"मैंने एक लेखकको ढूंढ निकाला है, उसकी स्टाइलमें—"

"उसकी बात तो तुमसे मैं अकसर ही सुना करती हूँ। कलकत्ता लिख दिया है मैंने उसकी एक पुस्तक भेजनेके लिए।"

"तुमने गजब ढाया! उसकी किताब! उस आदमीमें और चाहे जितने भी दोष हों, पर अपनी किताब वह छपवाता नहीं। उसका परिचय तुम्हें मेरे पाससे ही धीरे-धीरे प्राप्त करना होगा। नहीं तो शायद—"

"डरो मत मीता, तुमने उसे जिस रूपमें समझा है, मैं भी उसे उसी रूपमें समझ लूगी, इस बातका मुझे भरोसा है। मेरी ही जीत रहेगी।"

"क्यों?"

"मेरे अच्छे लगनेमें मैं जो पाती हूँ वह तो मेरा है ही, और तुम्हारे अच्छे-लगनेमें तुम जो पाते हो वह भी मेरा होगा। मेरी लेनेकी अञ्जली होगी हम-दोनोंके मनको मिलाकर। कलकत्तामें तुम्हारे छोटेसे कमरेकी किताबोंकी आलमारीके एक खानेमें ही दोनों कवियोंकी कविताएँ अँटा सकूंगी। अब तुम अपनी कविता कहो।"

"अब कहनेको जी नहीं चाहता। बीचमें बहुत ज्यादा तर्क-वितर्क हो जानेसे हवा खराब हो गई वन्या।"

"कुछ खराब नहीं हुई। हवा ठीक है।"

अमितने लावण्यके मुंहके सामने लटकते हुए बालोंको माथेके ऊपर हटाते हुए अत्यन्त दर्दके स्वरमें कहना शुरू किया—

"सुन्दरी, तुम हो मेरी शुक-तारका,
चमकती सुदूर आकाशमें,
चमकाती वहींसे हो शैल-शिखर-प्रान्तको,
तुम्हारी रात जब बीते तब
दे देना दर्शन तुम देख दिक्भ्रान्तको।

समझीं कन्या, चाँद बुला रहा है शुकताराको, अपनी रातकी संगिनीको चाहता है वह। अपनी रातोंसे उसे अरुचि हो गई है।

धरती जहाँ मिलती है अम्बरके गलेसे
वहाँका हूँ अर्ध-जाग्रत चन्द्र मैं,
कारी अँधियारीकी छातीमें छिपी हुई
अर्ध - आलोक - रेखाका रन्ध्र मैं।

उसकी इस अध-जगी थोड़ी-सी चाँदनीने अँधेरेको जरा-सा खरोंच-भर दिया है। इसीका उसे खेद है। स्वल्पताके इस जालने जो उसे जकड़ लिया है उसे तोड़ डालनेके लिए मानो वह सारी रात सोते-सोते घुमड़-घुमड़कर आहें भर रहा हो। कैसी कल्पना है! बहुत ही ग्रैण्ड!

मेरे लिए आसन आज
गहरी नींद सोये हुए
गगनने बिछाया है।
कुछ तन्द्राको करके कम
हृद्तन्त्रीको सपनेमें
बजा रही काया है।

पर ऐसा हलका होकर जीनेका बोझ जो बहुत ज्यादा है। जिस

नदीका पानी सूख गया है उसके सुस्त बहावकी थकानमें जंजाल जमाता रहता है, जो थोड़ा है वह अपनेको ढोनेमें तकलीफ पाता है। इसीसे वह कहता है—

सफर मेरा हुआ पूरा
धीमी चाल जाता पार।
थके मेरे सारे अग
रुक जाता स्वर बार-बार।

पर इस थकानमें ही क्या उसका अन्त है? अपने ढोले तारोंकी वीणाको नये तरीकेसे फिरसे बांधनेकी आशा उसे होने लगी है। दिगन्तके उस पार मानो किसीकी पगध्वनि उसे सुनाई देती है—

ओरी सखि सुन्दरी,
बीते न रात, उसके
पहले ही आना तू,
सपनेकी वही बात
अधूरी रह गई जो, जागकर सुनाना तू।

कलकी भूली हुई अधूरी बात शायद आज पूरी हो जाय, आशा तो है ही। कानोंमे सुनाई जो दे रहा है जाग्रत विश्वका कलरव, उसकी वह महान मार्गकी दूती हाथमें प्रदीप लिये आना ही चाहती है—

भूला पड़ा अपनेको
निशीथके अँधेरेमे,
उठा लेना पकड़ हाथ,
रखना अरुण प्रभातमें,
करना धन्य प्रकाशमे।

तल्लीन है सुप्ति जहां
बजता विश्व-मृदंग भी,
सौंपी वहीं वीणा है
अर्ध - जाग्रत चन्द्रने,
गाया गीत इन्द्रने ।

वह अभागा चाँद तो मैं ही हूँ वन्या ! कल सवेरे चला जाऊंगा। पर अपने चले-जानेको तो मैं शून्य नहीं रखना चाहता। उसके ऊपर आविर्भाव होगा सुन्दरी शुक्रतारकाका, जागरणका गीत लेकर आयेगी वह। अन्धकारमय जीवनके स्वप्नमें अब तक जो अस्पष्ट था, सुन्दरी शुक्रतारका उसे प्रभातमें सम्पूर्ण कर देगी। इसमें एक आशाका जोर है, भावी प्रभातका एक उज्ज्वल गौरव है,—तुम्हारे कवि रवीन्द्रनाथकी कविताकी तरह मुरझाया हुआ हताशका विलाप नहीं।"

"गुस्सा क्यों होते हो, मीता ? मेरे कवि रवीन्द्रनाथ जितना कर सकते हैं उससे ज्यादा वे नहीं कर सकते बार-बार यह बात कहनेसे लाभ क्या ?"

"तुम लोग सब मिलके उसे बहुत ज्यादा—"

"ऐसा न कहो, मीता ! मेरा अच्छा-लगना मेरा ही है, उससे अगर और-किसीका मेल न खाय या तुम्हारे साथ मेल न बैठे, तो उसमें क्या मेरा दोष है ? न-हो-तो, वचन देती हूँ, तुम्हारे उस पचहत्तर रुपयेवाले मकानमें, एक दिन मेरे लिए अगर जगह हो तो, तुम अपने कविकी रचना ही मुझे सुनाना ; मैं अपने कविकी रचना तुम्हें न सुनाऊंगी।"

"यह बात बेजा हुई जो ! परस्पर एक दूसरेका जुल्म कंधेसे कंधा मिलाकर ढोयेंगे, इसीलिए तो विवाह है।"

"रुचिका जुल्म तुमसे किसी भी तरह सहा न जायगा। रुचिके भोजमें तुम लोग निमन्त्रितोंके सिवा किसीको भीतर घुसने नहीं देते, मैं अतिथिको भी आदरके साथ बिठाती हूँ।"

"मैंने अच्छा नहीं किया तर्क उठाकर। हमारा यहांका वह शेष-सध्याका सुर बिगड़ गया।"

"जरा भी नहीं। जो कुछ कहनेका है सब स्पष्ट कहनेके बाद भी जो सुर टिका रहता है वही हम लोगोंका सुर है। उसमें क्षमाका अन्त नहीं।"

"आज मुझे अपने मुंहका विस्वाद मिटाना ही पड़ेगा। पर बगला-काव्यसे न होगा। अगरेजी काव्यसे मेरी विचार-बुद्धि बहुत-कुछ शान्त रहती है। योरोपसे लौटा था तब, शुरू-शुरूमें मैंने कुछ दिन प्रोफेसरी की थी।"

लावण्यने हँसके कहा—"हम लोगोंकी विचार-बुद्धि अगरेजके घरके बुल-डौगकी तरह है, धोतीकी लाँग लटकती देखता है तो भोंकने लगता है। धोती-विभागमें कौनसा भद्र है, इसका उसे पता नहीं लगता। बल्कि खानसामेका लगमा देखता है तो पूँछ हिलाने लगता है।"

"यह तो मानना ही पड़ेगा। पक्षपात स्वाभाविक चीज नहीं; अधिकांश क्षेत्रोंमें वह फरमाइशसे बनाया जाता है। अंग्रेजी साहित्यका पक्षपात बचपनसे ही कनेठी खा-खाकर अभ्यस्त हो गया है। उस अभ्यासके जोरसे ही जैसे एक पक्षको बुरा बतानेका साहस नहीं होता वैसे ही दूसरे पक्षको अच्छा कहनेके साहसका अभाव बना रहता है। खैर जाने दो, आज निवारण चक्रवर्ती भी नहीं, आज तो बिलकुल खालिस अंग्रेजी कविता चलने दो, बिना अनुवादके।"

"नहीं नहीं, मीता, तुम्हारी अंग्रेजी रहने दो, उसे घर जाकर

टेबिलपर बैठकर सुनाते रहना। आज हम लोगोंकी इस सध्याकी कविता निवारण चक्रवर्तीकी ही होनी चाहिए, और-किसीकी नहीं।"

अमितने उत्फुल्ल होकर कहा—"जय निवारण चक्रवर्तीकी जय! इतने दिन बाद वह अमर हुआ। वन्या, उसे मैं तुम्हारा सभा-कवि वना दूंगा। तुम्हारे सिवा और-किसीके द्वारका प्रसाद वह न लेगा।"

"उससे क्या वह हमेशा सन्तुष्ट रहेगा?"

"नहीं रहेगा तो उसे कान पकड़के विदा कर दिया जायगा।"

"अच्छा, कान पकड़नेकी बात पीछे तय की जायगी, पहले कानमें पड़ने दो।"

अमित कहने लगा—

कितना धर धीरज तुम
ठहरीं दिन-रात पास।
अपने पद - चिह्नोंको
छोड़ गई बार-बार
(मेरे) ललाट-पथकी धूलमें,
मानो पराग फूलमे।
आज जब
जाना है दूर तब
कर जाऊँगा तुम्हें दान
तुम्हारा ही विजय-गान।
मेरे इस जीवनमें
बार-बार व्यर्थ हुए
बहुतेरे आयोजन,

होमानल नहीं जला,
शून्य में विलीन हुईं
आशाएँ धूआँ बन
सूना कर मेरा मन।
बार - बार आँका है
क्षणिककी उस शिखाने
निश्चेतन निशीथके
क्षीण टीका भालमें।
निश्चिह्न हो गया सब
चिह्न - हीन कालमें।
अब तुम्हारा आगमन
होगा, होम-हुताशन
गौरव से जलेगा।
यज्ञ मेरा फलेगा।
आहूति दिन-शेषमें
अपनी दी तुम्हारे हेत
लो अब प्रणाम मेरा
जीवनका परिणाम पूर्ण।
देना स्पर्श स्नेहका
मेरी इस प्रणतिको।
तुम्हारे ही ऐश्वर्यमें
सिंहासन बिछा जहाँ,
करना आह्वान मेरा,

मिल जाय जरूर वहाँ
स्थान मेरी प्रणतिको।

१३
आशंका

आज, सवेरे से ही काममें मन लगाना लावण्यके लिए कठिन हो गया है। वह घूमने भी नहीं गई। अमितने कहा था, शिलागसे जानेके पहले आज सवेरे वह उन लोगोंसे मिलना नहीं चाहता। उस प्रतिज्ञाकी रक्षाका भार दोनोंपर है। क्योंकि जिस रास्तेसे वह घूमने जाती है उसी रास्तेसे अमितको जाना है; इससे मनमें उसके लोभ भी काफी था। उसे कसके दबाना पड़ा। योगमाया तड़के ही स्नान करके अपनी पूजा-आह्निकके लिए कुछ फूल चुनती हैं। उनके निकलनेके पहले ही लावण्य उस जगहसे चली आई युकैलिप्टस पेड़के नीचे। हाथमें दो-एक किताब थीं, शायद अपनेको और दूसरोंको भुलावेमें डालनेके लिए। एक किताबके पन्ने खुले थे; पर दिन चढ़ रहा है, पन्ने उलटे नहीं जा रहे। मनमें बार-बार वह यही कह रही है कि जोवनके महोत्सवका दिन कल समाप्त हो गया। आज सवेरेसे मेघ और धूपमेंसे भग्नताका दूत बीच-बीचमे आकाशमें बुहारी लगा रहा है। मनमे दृढ विश्वास है कि अमित चिर-पलायित है, एक बार वह खिसक गया तो फिर उसका पता नहीं लग सकता। राह चलते-चलते न-जाने कब वह कहानी शुरू करता है, उसके बाद रात आती है; और दूसरे दिन सवेरे देखा जाता है कि कहानीका सूत्र टूट गया है, पथिक चला गया है। इसीसे, लावण्य सोच

रही थी कि उसकी कहानी अबसे चिरदिनके लिए बाकी रह गई। आज उस असमाप्तिकी म्लानता है सवेरेके उजालेमें, और अकाल-अवसानका अवसाद है आर्द्र हवामें।

इतनेमें, करीब नौ बजे होंगे, धमाधम आवाज करता हुआ अमित आ पहुँचा; और लगा पुकारने—"मौसीजी, मौसीजी!" योगमाया सध्या-पूजासे निवृत्त होकर भण्डारके काममें लगी हुई थीं। आज उनका भी मन पीड़ित था। अमितने अपनी बातोंसे, हँसीसे और चाचल्यसे इतने दिनों तक उनके स्नेहासक्त हृदय-मनको, उनके घरको, भर रखा था। 'अमित चला गया' इस व्यथाके बोझसे उनका आजका सवेरा मानो वृष्टि-बिन्दुके भारसे तुरत-गिरे-हुए फूलकी तरह मुरझा गया है। अपने विच्छेद-पीड़ित घर-गृहस्थीके काममें आज उन्होंने लावण्यको नहीं बुलाया, समझ गईं थीं कि आज उसे अकेली रहनेकी जरूरत है, लोगोंको दृष्टिके ओझल।

लावण्य झटपट उठके खड़ी हो गई; गोदपर से किताब गिर गई, इसकी कुछ खबर ही नहीं उसे। इधर योगमाया फुरतीसे भण्डार-घरसे निकल आई; और बोलीं—"क्या है बेटा अमित, भूकम्प हो रहा है क्या?"

"भूकम्प तो है ही! चीज-वस्त सब रवाना कर दी हैं। गाड़ी तैयार है। डाकखाना गया था, यह देखने कि कोई चिट्ठी-पत्री तो नहीं आई। वहाँ एक टेलिग्राम मिला।"

अमितके चेहरेका भाव देखकर योगमाया उद्विग्न हो उठीं; पूछा—'सब अच्छी खबर है तो?"

लावण्य भी आ पहुँची। अमितने व्याकुल चेहरेसे कहा—"आज

ही शामको आ रहे हैं सब ; मेरी बहन सिसी, उसकी सखी केटी मित्र और उसके भाई नरेन।"

"सो इसमें चिन्ताकी क्या बात है, बेटा! सुना है घुड़दौड़के मैदानके पास एक मकान खाली है। अगर कहीं भी कोई इन्तजाम न हुआ तो हमारे यहाँ क्या किसी कदर जगह न होगी?"

"इसके लिए चिन्ता नहीं, मौसी! उन लोगोंने खुद ही टेलिग्राम करके होटलमें जगह ठीक कर ली है।"

"और चाहे जो हो बेटा, तुम्हारी बहन वगैरह आकर देखेंगी कि तुम उस मनहूस झोंपड़ीमें हो, यह हर्गिज न होगा। वे अपने आदमीकी सनकके लिए हम ही लोगोंको जुम्मेदार ठहरायेंगी।"

"नहीं मौसीजी, मेरा पैराडइज़ लॉस्ट। उस नग्न असवावके स्वर्गसे मेरी विदा हो चुकी। उस रस्सीकी खाटके घोंसलेसे मेरे सुख-स्वप्न सब उड़ भागेंगे। मुझे भी जगह लेनी पड़ेगी उस अति-परिष्कृत होटलके एक अति-सभ्य कमरेमें।"

बात ऐसी कुछ खास नहीं थी, फिर भी लावण्यका चेहरा फक पड़ गया। इतने दिनोंसे यह बात कभी उसके ध्यानमें ही न आई थी कि अमितका जो समाज है वह उन लोगोंके समाजसे हजारों योजन दूर है। एक ही क्षणमें इसे वह समझ गई। अमित जो आज कलकत्ता जा रहा था उसमें विच्छेदकी कठोर मूर्ति नहीं थी। किन्तु आज यह जो उसे होटल जानेके लिए मजबूर होना पड़ रहा है, इसीसे लावण्य समझ गई कि जिस घरको इतने दिनोंसे वे दोनों नाना अदृश्य उपकरणोंसे गढ़ते आ रहे थे वह घर शायद अब किसी भी दिन दिखाई न देगा।

लावण्यकी ओर एक नजर देखकर अमितने योगमायासे कहा—"मैं होटलमें जाऊँ चाहे जहन्नममें, पर असल घर मेरा यहीं रहा।"

अमित समझ गया कि शहरसे एक अशुभ दृष्टि आ रही है। मन-ही-मन उसने तरह-तरहके प्लैन बना लिये हैं ताकि सिसीका दल यहाँ न आ सके। परन्तु इधर कुछ दिनोंसे उसकी चिट्ठी-पत्री आ रही हैं योगमायाके घरके ठिकानेसे, तब उसने नहीं सोचा था कि इससे कभी उसपर विपत्ति आ सकती है। अमितके मनके भाव दबे नहीं रहना चाहते, यहाँ तक कि कुछ आधिक्यके साथ ही प्रकट होते हैं। बहनके आगमनके सम्बन्धमें उसका इतना ज्यादा उद्वेग योगमायाको कुछ असंगत-सा लगा। लावण्य भी समझ गई कि अमित उसके साथ ऐसे सम्बन्धके लिए अपनी बहन आदिके सामने शर्म महसूस कर रहा है। गरज यह कि मामला लावण्यके लिए विस्वाद और असम्मानजनक हो उठा।

अमितने लावण्यसे पूछा—"तुम्हें फुरसत है क्या, घूमने चलोगी?"

लावण्यने जरा-कुछ कठोरताके साथ ही जवाब दिया—"नहीं, मुझे फ़ुरसत नहीं।"

योगमाया जरा-कुछ व्यस्त होकर बोल उठीं—"जाओ न बिटिया, घूम आओ।"

लावण्यने कहा—"मा, कुछ दिनोंसे सुरमाको पढ़ानेमें मेरी तरफसे बड़ी लापरवाही हो रही है। बहुत कसूर हो गया है मुझसे। कल रात ही को तय किया था मैंने, कि आज़से अब किसी भी तरह ढिलाई न करूँगी।" और वह ओठ दबाकर चेहरा कठोर करके बैठी रही।

लावण्यके इस जिद्दी मिजाजसे योगमाया परिचित थीं। दबाव डालने या अनुरोध करनेकी उन्हें हिम्मत न हुई।

अमितने नीरस कण्ठसे कहा—"मैं भी चल दिया कर्तव्य करने, उन लोगोंके लिए सब ठीक करके रखना है।"

इतना कहकर चले जानेके पहले वह बरामदेमें एक बार स्तब्ध होकर खड़ा हो गया। बोला—"वन्या, वह देखो। पेड़की ओटमेंसे मेरी झोंपड़ीका छप्पर जरा-जरा दीख रहा है। एक बात तुम लोगोंसे कही नहीं गई है, वह मकान मैंने खरीद लिया है। मकानका मालिक तो पहले सुनके दङ्ग रह गया, उसने जरूर सोचा होगा कि वहाँ मुझे सोनेकी गुप्त खानका पता लग गया है। कीमत खूब कसके वसूल की है। वहाँ सोनेकी खानका पता तो लग ही गया था, उसकी खबर सिर्फ मुझ ही को थी। मेरी जीर्ण कुटीरका ऐश्वर्य सबकी निगाहसे छिपा रहेगा।"

लावण्यके चेहरेपर एक गम्भीर विषादकी छाया आ पड़ी। उसने कहा—"और किसीकी बात तुम इतनी बढ़ा-चढ़ाकर क्यों सोचते हो? सब जान ही जायेंगे तो क्या होगा? ठीक-ठीक जान जाना तो ठीक ही है, फिर असम्मान करनेका किसीको साहस ही न होगा।"

इस बातका कुछ उत्तर न देकर अमितने कहा—"वन्या, मैंने तय कर लिया है कि ब्याहके बाद उसी मकानमें आकर हम लोग रहेंगे कुछ दिन। मेरा वह गंगा-किनारेका बगीचा, वह घाट, वह वटवृक्ष, सब-कुछ समा गया है इस मकानमें। तुम्हारा दिया हुआ 'मिताई' नाम इसीको फबता है।"

"उस मकानसे आज तुम निकल आये हो, मीता। फिर किसी

दिन उसमें घुसना चाहोगे तो देखोगे, वहाँ तुम समा नहीं रहे हो। संसारमें आजके दिनके घरमें कलके दिनको जगह नहीं रहती। उस दिन तुमने कहा था, जीवनमें मनुष्यकी पहली साधना गरीबीकी होती है; दूसरी साधना ऐश्वर्यकी है। उसके बाद अन्तिम साधनाकी बात नहीं बताई, वह है त्यागकी।"

"बन्या, यह तुम्हारे रवि ठाकुरकी बात है। उसने लिखा है, शाहजहाँ आज अपने 'ताजमहल' से भी आगे बढ गया। एक बात तुम्हारे कविके दिमागमें नहीं आई कि हम लोग जो कुछ बनाया करते हैं वह इसीलिए कि हम उस बनी हुई चीजसे आगे बढ़ जायँ। विश्व-सृष्टिमें इसीको कहते हैं 'एवोल्यूशन'। एक अद्भुत भूत सरपर सवार रहता है और कहता है, 'सृष्टि करो'। सृष्टि करते ही भूत उतर जाता है, तब फिर उस सृष्टिकी भी जरूरत नहीं रहती, मगर इसके मानी यह नहीं कि उस सृष्टिको छोड़-जाना ही चरम बात हो। दुनियामे शाहजहाँ-मुमताजकी अक्षय धारा बराबर बह ही रही है, वे क्या अकेले ही हैं? इसीलिए तो 'ताजमहल' किसी दिन शून्य ही न हो सका। निवारण चक्रवर्तीने सुहाग-रातपर एक कविता लिखी है, वह तुम्हारे कविवरकी 'ताजमहाल' कविताका संक्षिप्त उत्तर है, पोस्टकार्डपर लिखा हुआ—

तुम्हें छोड़ जाना है
सवेरेकी होनमें
सुनके रथचक्र शब्द
हो उठेगी रात, जब
उदासी अनमनी - सी।

हाय रे सुहाग - रात,

बाहर है विराट तू

बिछोहकी डकैत - सी।

टूटती या फूटती है

फिर भी तू जितनी ही,

करती बरबाद तोड़

वरमाला उतनी ही।

है तू क्षयहीन सदा,

तेरा यह उत्सव भी

बिघटे न विच्छिन्न हो

नीरव न होता कभी।

कौन कहता है तुम्हे

छोड़ चला गया युगल

सूनी कर शय्याको ?

नहीं गया, नहीं गया,

नये - नये यात्री गण

घूम-फिर आते वहीं

तुम्हारे आह्वानपर

मुक्त उदार द्वारपर

अरी ओ सुहाग - रात,

प्रेम ही एक विश्वमें

मृत्यु-हीन अजर है,

और तू भी अमर है।

तुम्हारा कवि सिर्फ चले जानेकी बात ही कहता है बन्या, रह जानेका गीत गाना नहीं जानता। बन्या, कवि क्या कहता है कि हम भी दोनों उस दिन उस दरवाजेको खटखटायेंगे, और दरवाजा खुलेगा नहीं ?"

"मेरी विनती रक्खो मीता, आज सवेरे कविकी लड़ाई न छेड़ो। तुम क्या समझते हो कि पहले दिनसे ही मैं समझी नहीं हू कि तुम्हीं निवारण चक्रवर्ती हो ? पर तुम अपनी इन कविताओंमें अभीसे हमारे प्रेमकी समाधि बनाना शुरू मत करो, कमसे कम उसके मरने तक प्रतीक्षा करो।"

अमित आज बहुतसी फालतू बातें कहकर अपने भीतरके किसी उद्वेगको दबाना चाहता है, लावण्य इस बातको समझ गई।

अमित भी समझ गया कि काव्यका द्वन्द्व कल शामको बेमेल नहीं हुआ, किन्तु आज सवेरेसे उसका सुर बिगड़ा जा रहा है। मगर यह बात लावण्यके लिए स्पष्ट हो रही है, यह उसे अच्छा नहीं लगा। वह जरा-कुछ नीरस भावसे बोला—"तो मैं जाऊँ, विश्व-जगतमें मेरे लिए भी काम है, फिलहाल वह है होटल देखना। उधर शायद अभागे निवारण चक्रवर्तीकी छुट्टीकी मियाद भी खतम हुई जा रही है।"

लावण्यने अमितका हाथ पकड़कर कहा—"देखो मीता, मनको ऐसा बनाये रखना जिससे हमेशा मुझे क्षमा कर सको। अगर किसी दिन चले जानेका समय आवे, तो, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, गुस्सा होकर न चले जाना।"—इतना कहकर वह आँसू छिपानेके लिए जल्दीसे दूसरे कमरेमें चली गई।

अमित कुछ देर तक स्तब्ध खड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे, अन्यमनस्क-सा होकर, चला गया युकैलिप्टसके नीचे। देखा कि वहाँ

कुछ अखरोटके छिलके बिखरे हुए पड़े हैं। देखते ही उसके मनमें कैसी-तो एक तरहकी व्यथा-सी चुभने लगी। जीवनकी धारा चलते-चलते अपने जो चिह्न बिछा जाती है, उनकी तुच्छता ही सबसे ज्यादा सकरुण होती है। उसके बाद देखा कि घासपर एक किताब पड़ी हुई है, रवि ठाकुरकी 'बलाका'। उसके नीचेके पन्ने भीग गये हैं। एक बार सोचा कि उसे दे आये जाकर, पर देने नहीं गया, जेबमें रख ली। होटल जानेको उद्यत हुआ, पर गया नहीं; बैठ गया पेड़के नीचे। रातके भीगे हुए बादलोंने आकाशको खूब कसके माँज दिया है। धूल-धुली हवामें चारों तरफका चित्र अत्यन्त स्पष्ट दिखाई दे रहा है, पहाड़ और पेड़-पौधोंके सीमान्त मानो घने नील आकाशमे खुदे हुए हों, जगत् मानो पास आकर मनके बिलकुल ऊपर आ लगा हो। आहिस्ते-आहिस्ते दिन चला जा रहा है, उसके भीतर है भैरवीका सुर।

लावण्यकी प्रतिज्ञा थी कि अबसे वह खूब कसके काम करने लग जायगी, फिर भी, जब दूरसे देखा कि अमित पेड़के नीचे बैठा है, तो उससे रहा न गया, भीतरसे उसका हृदय काँप उठा, आँखोंमें आँसू भर आये। पास आकर बोली—"मीता, तुम क्या सोच रहे हो?"

"इतने दिनोंसे जो सोच रहा था, उससे बिलकुल उलटा।"

"बीच-बीचमें मनको बिलकुल उटलके बिना देखे तुम चंगे नहीं रहते। सो, तुम्हारी उलटी चिन्ता कैसी है, सुनू तो सही?"

"तुम्हें मनके अन्दर लिये-लिये मैं बराबर घर ही बना रहा था; कभी गंगाके किनारे, कभी पहाड़के ऊपर। आज मनमें एक चित्र जाग

रहा है ; सवेरेके उजालेमें उदास करनेवाले एक रास्तेका चित्र, जो वनकी छाया-ही-छायामें उन पहाड़ियोंके ऊपरसे चलता चला गया है। हाथमें एक लम्बा भाला है, और पीठपर है एक चमड़ेके स्ट्रैपसे बँधा हुआ चौखूटा थैला। तुम चलोगी साथ। तुम्हारा नाम सार्थक हो वन्या, तुम मुझे बन्द घरसे निकालकर रास्तेपर बहाये ले जा रही हो मालूम होता है। घरमें बहुत आदमी होते हैं, और रास्ता होगा हम दो-जनोंका।"

"डायमण्डहारबरका बगीचा तो चला ही गया, उसके बाद वह पचहत्तर-रुपये-वाला घर भी बेचारा जाता रहा। खैर जाने दो। पर चलनेके रास्तेमें विच्छेदकी व्यवस्था कैसी करोगे? दिन छुपते वक्त तुम एक पान्थशालामें घुसोगे और मैं किसी दूसरीमे?"

"उसकी जरूरत नहीं होगी, वन्या। चलना ही नया बनाये रखता है ; कदम-कदमपर नया, पुराना होनेका वक्त ही नहीं मिलता। बैठा रहना ही बुढापा है।"

"अकस्मात् यह खयाल तुम्हारे मनमे क्यों आया, मीता?"

"तो सुनो, बताता हू। अचानक शोभनलालकी एक चिट्ठी मिली मुझे। उसका नाम सुना होगा शायद, रायचन्द-प्रेमचन्द स्कॉलर-वाला। भारतीय इतिहासके प्राचीन मार्गोंकी खोज करनेके लिए, कुछ दिन हुए, वह निकल पड़ा है। वह अतीतके लुप्त मार्गका उद्धार करना चाहता है। मेरी इच्छा है कि मैं भविष्यका मार्ग तैयार करू।"

लावण्यकी छातीके भीतर सहसा एक जोरका धक्का लगा। उसको बातको बीच ही में रोककर लावण्यने कहा—"शोभनलालके साथ एक ही साल मैंने एम० ए० की परीक्षा दी थी। उसके बादकी खबर सुननेको जी चाहता है।"

"एक बार तो उसे सनक चढी कि अफगानिस्तानके प्राचीन शहर कापिशके भीतरसे किसी दिन जो पुराना रास्ता गया था, उसकी वह खोज करेगा। उसी रास्तेसे युएन साँगने भारतमे तीर्थयात्रा की थी, और उससे भी पहले अलेक्जेण्डरने जो रणयात्रा की थी वह भी उसी रास्तेसे। खूब कसके उसने पश्तो पढी और पठानी कायदे-कानूनोंका अभ्यास किया। सुन्दर चेहरेपर ढीले कपड़े पहन लेनेसे ठीक पठान जैसा नहीं दिखाई देता, दिखाई देता है फ्रान्सीसी-सा। एक दिन उसने मुझे आकर पकड़ा फ्रान्समें जो फ्रान्सीसी विद्वान इस काममें लगे हुए हैं उनके नाम परिचय-पत्र लिख देनेके लिए। फ्रान्समें रहते वक्त किसी-किसीके पास मैंने पढ़ा था। पत्र तो लिख दिये मैंने, पर भारत-सरकारसे उसे छूट-पत्री नहीं मिली। उसके बादसे वह दुर्गम हिमालयपर बराबर मार्ग ढूढ़ता फिर रहा है, कभी काश्मीर जाता है तो कभी कुमायू। अबकी बार उसकी तबीयत चली है हिमालयके पूर्व-प्रान्तको भी वह छान डालेगा। बौद्धधर्म-प्रचारका रास्ता उधरसे कहाँ गया है, उसे वह देखना चाहता है। उस राह-सनकीकी बात याद आते ही मेरा मन उदास हो जाता है। पोथियोंके अन्दर हम सिर्फ बातोंका रास्ता ढूढ-ढूढकर आँखें खो बैठते हैं, और वह पागल निकला है राहकी पोथी पढने, मानव-विधाताके अपने हाथकी लिखी हुई। मुझे कैसा लगता है जानती हो?"

'क्या, बताओ?"

"ऐसा लगता है कि प्रथम यौवनमें किसी दिन शोभनलालने किसी कंकण-पहने हाथोंका धक्का खाया है, इसीसे वह घरसे छिटक पड़ा है। उसकी कहानी मुझे मालूम नहीं, पर हाँ, एक दिनकी बात है, मेरे साथ अकेला ही था वह, बातों-ही-बातोंमें रातके बारह बज गये, जंगलेके बाहर

सहसा चाँद दिखाई दिया एक फूल खिले मौलसिरीके पेड़की ओटमेंसे; ठीक उसी समय किसीको बात करनी चाही उसने, नाम नहीं बताया, न कुछ ब्योरा ही बताया; जरा-कुछ आभास देते-देते ही गला भारी हो आया, और चटसे उठके चल दिया। मैं समझ गया कि उसके जीवनमें कहीं-न-कहीं एक बहुत ही निष्ठुर बात चुभी हुई है। उस बातको ही शायद वह राह चलते-चलते पाँवोंसे घिस-घिसके मिटा देना चाहता है।"

लावण्यका ध्यान सहसा उद्भिदतत्त्वकी ओर चला गया, झुककर देखने लगी घासमें सफेद-पीले रंगके एक वनफूलकी तरफ। अत्यन्त मनोयोगके साथ उसे उसकी पँखड़ियाँ गिननेकी आवश्यकता मालूम हुई।

अमितने कहा—"समझीं वन्या, मुझे तुमने आज रास्तेकी तरफ धकेल दिया है।"

"कैसे?"

"मैंने घर बनाया था। आज सवेरे तुम्हारी बातोंसे मालूम हुआ कि तुम उसके भीतर पाँव धरनेमें सकुचाती हो। आज दो महीनेसे मैंने मन-ही-मन घर सजाया। तुम्हें बुलाकर कहा, आओ प्रिये, घरमें आओ; और तुमने आज प्रियाका साज-शृंगार उतार दिया; बोलीं, यहाँ जगह न होगी, बन्धु, हम लोगोंकी सप्तपदी चिरकाल तक गमन करेगी।"

वनफूलकी उद्भिद-विद्या आगे नहीं बढ़ी। लावण्य सहसा उठ खड़ी हुई; और क्लिष्टस्वरमें बोली—"मीता, अब रहने दो, वक्त नहीं रहा।"

१४
धूमकेतु

इतने दिनों बाद अमितको पता चला कि लावण्यके साथ उसके सम्बन्धको शिलांगके सब बंगाली जान गये हैं। सरकारी आफिसके क्लर्कोंका मुख्य आलोच्य विषय है उनके जीविका-भाग्य-गगनमें कौनसा ग्रह राजा हुआ और कौनसा मन्त्रीवर। इतनेमें उनकी नजरोंमें पड़ गया मानव-जीवनके ज्योतिर्मण्डलमें एक युग्म-ताराका आवर्तन, एकबारगी फास्ट मैग्निच्युडका प्रकाश। पर्यवेक्षकोंकी अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार इन दोनों नव-दीप्यमान ज्योतिष्कोंके आग्नेय-नाट्यकी नाना प्रकार व्याख्याएँ चल रही हैं।

पहाड़पर हवा खाने आया था कुमार मुखर्जी अटर्नी, वह भी इस व्याख्यामें आ पड़ा। संक्षेपमें कोई उसे कहता 'कुमार मुख' और कोई कहता 'मार मुख'। सिसी वगैरहकी मित्र-गोष्ठीका अन्तश्चर नहीं था वह, मगर ज्ञाति यानी जान-पहचानके दलमें था। अमितने उसका नाम रखा था धूमकेतु। इसका एक कारण यह था कि वह इनके गुटके बाहरका है, फिर भी बीच-बीचमें इनके कक्षमार्गमें वह पूँछ छुआ जाता है। सभीका अनुमान है कि जो ग्रह उसे खास तौरसे खींच रहा है उसका नाम है लिसी। इस विषयको लेकर सभी-कोई हँसी-मजाक किया करते हैं, पर खुद लिसी इससे गुस्सा होती और शरमाती है। और इसीलिए लिसी अकसर उसकी जोरसे पूछ मरोड़कर चली जाती है, पर इससे देखा यह जाता है कि धूमकेतुकी पूछ या मूछका कुछ भी नुकसान नहीं होता।

अमितने शिलांगके राह-बाजारमें कुमार मुखको दूरसे दो-एक बार देखा है। उसे देख पाना जरा मुश्किल ही है। आज तक वह विलायत

नहीं गया ; और यही वजह है कि उसके चाल-चलनमें विलायती कायदे अत्यन्त उत्कटरूपसे प्रकट होते हैं। उसके मनमें हरवक्त एक मोटा चुरुट सुलगता रहता है ; और यही उसके 'धूमकेतु-मुख' नामका प्रधान कारण है। अमित उससे दूरसे ही बचते रहनेकी कोशिश करता रहता है और अपनेको भुलावा देता रहा है कि धूमकेतु इस बातको शायद नहीं जानता। परन्तु देखकर भी न देखना एक बड़ी विद्या है, चोरी-विद्याकी तरह उसकी सार्थकता है पकड़े न जानेमें। उसमें प्रत्यक्ष दृश्यको सम्पूर्ण पार करके देखनेकी पारदर्शिता होनी चाहिए।

कुमार मुखने शिलांगके बंगाली-समाजसे ऐसी बहुत-सी बातें संग्रह कीं हैं जिनका मोटे अक्षरोंमें शीर्षक दिया जा सकता है—"अमित रायका अमिताचार।" मुँहसे जिन लोगोंने सबसे ज्यादा निन्दा की है, मनसे वे ही अब सबसे अधिक रस लिया करते हैं। यकृतकी विकृति सुधारनेके लिए कुमारका कुछ दिन यहाँ रहना तय था, परन्तु जनश्रुति-विस्तारके उग्र उत्साहने उसे पाँच ही दिनमे कलकत्ता वापस भेज दिया। वहाँ जाकर सिसी-लिसीकी सोसाइटीमे उसने अपनी चुरुट-धूमावृत अत्युक्तियोंके उद्‌गारसे अमितके सम्बन्धमें कौतुक-कुतूहलोंसे विजड़ित एक विभीषिका-सी खड़ी कर दी।

अभिज्ञ पाठक मात्र अब इस बातका अनुमान लगा चुके होंगे कि सिसी-देवताका वाहन है केटी मित्तिरका बड़ा भाई नरेन। अब चर्चा उठी है कि उसकी बहुत दिनोंसे चली-आई-हुई वाहन-दशा अब वैवाहनकी दशम दशामें उत्तीर्ण होगी। सिसी अब मन-ही-मन राजी है। परन्तु ऊपरसे ऐसा भाव दिखाकर कि राजी नहीं है, उसने एक प्रकारका प्रदोष-अन्धकार खड़ा कर रखा है। नरेनने सोच रखा था कि अमितकी सम्मतिको

सहायतासे वह इस संशयको पार कर सकेगा, मगर अमित अहमक न तो कलकत्ते ही लौट रहा है और न चिट्ठीका जवाब ही दे रहा है। अंग्रेजीके जितने भी गर्हित शब्दभेदी वाक्य उसे मालूम थे, उन सबको वह प्रकट और स्वगत उक्तियोंमें लपता अमितकी ओर फेंक चुका। यहाँ तक कि तारसे अत्यन्त बेतार वाक्य भी शिलाग भेजनेसे वह बाज नहीं आया, किन्तु, उदासीन नक्षत्रको लक्ष्य करके छोड़ी हुई उद्धत हवाई-आतशबाजीकी तरह, कहीं भी उसकी दाह-रेखा नहीं पड़ी। अन्तमें सर्वसम्मतिसे तय हुआ कि असली हालतकी सरे-जमीन तहकीकात होना जरूरी है। सर्वनाशके स्रोतमें अमितकी चोटीका छोर भी अगर कहीं थोड़ा-बहुत दिखाई दे, तो उसे खींचकर शीघ्र किनारे लगाना आवश्यक है। इस विषयमें उसकी अपनी बहन सिसीकी अपेक्षा पराई बहन केटीका उत्साह बहुत ज्यादा है। हमारे यहाँ पॉलिटिक्समें जैसा अफसोस प्रचलित है कि भारतका धन विदेशको चला जा रहा है, केटी मिटरका भाव लगभग उसी जातिका है।

नरेन मिटर एक लम्बे अरसे तक योरोपमें था। जमींदारका लड़का ठहरा, आमदनीकी कोई चिन्ता नहीं, खर्चके लिए भी वही बात थी, और विद्यार्जनकी चिन्ता भी उसी मात्रामें हलकी थी। विदेशमें खर्चकी तरफ ही उसने ज्यादा ध्यान दिया था, अर्थ और समय दोनों ही दृष्टिसे। अपनेको कलाकारके रूपमें परिचित करा सकनेपर वहाँ एकसाथ दायित्वमुक्त स्वाधीनता और अहैतुक-आत्मसम्मान प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए वह कला-सरस्वतीके अनुसरणमें, योरोपके बहुतसे बड़े-बड़े शहरोंके बोहीमियन (Bohemian : सामाजिक बन्धन-विद्रोही शिल्प-साहित्य-सेवियोंके) मुहल्लोंमें रहा है। कुछ दिन तक कोशिश करनेके

बाद, स्पष्टवक्ता हितैषियोंके कठोर अनुरोधसे उसे चित्र बनाना छोड़ देना पड़ा, अब वह चित्रकलाकी समझदारीमें [परिपक्व होनेकी खातिर उस विषयमें अपनी निरपेक्ष-प्रामाणिकताका परिचय दिया करता है। चित्र-कलाको वह फला-फुला नहीं सकता, पर दोनों हाथोंसे उसे मसल जरूर सकता है। फरासीसी ढाँचेमें उसने अपनी मूँछोंके दोनों किनारे बड़े जतनसे कटकित कर लिये हैं; और दूसरी ओर सिरके घने-लम्बे बालोंके प्रति सयत्न-अवहेलना भी करता है। चेहरा उसका अच्छा ही है, पर उसे और भी अच्छा बनानेकी बहुमूल्य साधनामें उसकी आईनेदार टेबिल पेरिसके विलास-वैचित्र्यसे भाराक्रान्त रहा करती है। उसकी मुँह हाथ धोनेकी टेबिलके उपकरण दशाननके लिए भी ज्यादा साबित हो सकते थे। कीमती 'हैवाना' सिगार सुलगाना और दो-चार कस खींचकर उसे बड़े आसान तरीकेसे अवज्ञाके साथ ऐस्ट्रेमें छोड़ देना, और हर महीने पहननेके कपड़े फरासीसी धोबीके यहाँसे धुलवाकर पोस्ट-पार्सलसे मगाना, इन सब बातोंको देखते हुए उसके आभिजात्यके विषयमे सन्देह करनेका साहस नहीं होता। योरोपकी श्रेष्ठ दरजी-शालाके रजिस्टरमें उसकी देहका नाप और नम्बर लिखे हुए हैं; और भी ऐसी जगह जहाँ कि पटियाला और कपूरथलाके राजाओंके नाम भी मिल सकते हैं। उसकी बाजारू अंग्रेजी-भाषाका उच्चारण विजड़ित और विलम्बित होता है; और उसमें अधखुली आँखोंके अलस कटाक्षका सहयोग अनतिव्यक्त-सा रहता है। जो लोग इस विषयमें जानकार या अनुभवी हैं उनसे सुननेमे आया है कि इंग्लैण्डके बहुतसे नीले खूनके अमीरोंके कंठस्वरमें इस तरहकी गद्गद् जड़ता या अस्पष्टताका भाव पाया जाता है। इसके अलावा घुड़दौड़की अपभाषा और विलायती शपथोंके दुर्वाक्य-सम्पदमेंवह अपने दलके लोगोंमे आदर्श पुरुष है।

केटी मिटरका असल नाम केतकी है। और, चाल-चलन यानी रहन-सहन उसका बड़े भाईके ही कायदे-कारखानेमें भवकेकी परम्परासे शोधित, तीसरी बार चुआये हुए विलायती कौलिन्यके तेज एसेन्सके समान है। साधारण भारतीय कन्याके दीर्घकेश-गौरवके गर्वके प्रति गर्व करके ही मानो उसने अपने बालोंपर कैंची चलवा दी है, जिससे उसके जूड़ेने मेढकी या मेढकके बच्चेकी पूँछकी तरह विलुप्त होकर अनुकरणमें कुदक्नेकी परिणत अवस्था प्राप्त कर ली है। उसके चेहरेकी स्वाभाविक गौरिमा (गोरापन) रंगके प्रलेपसे कलई की हुई है। जीवनकी आद्यलीलामें केटीकी काली आँखोंका भाव था स्निग्ध, अब मालूम होता है कि वह हरएकको देख ही नहीं पाती। और अगर देख भी लेती है तो उसपर उसका ध्यान ही नहीं जाता, और कदाचित् ध्यान जाता भी है तो उस दृष्टिमें मानो अधखुली छुरीकी-सी झलक रहती है। प्रारम्भिक उमरमें ओठोंपर सरल माधुर्य था, और अब, बार-बार टेढ़े होते रहनेसे उनमें टेढ़े अंकुश जैसा भाव स्थायी हो गया है। तरुणियोंके वेशके वर्णनमें एक तो मैं अनाड़ी हूं, दूसरे उसकी परिभाषा नहीं जानता। कुलजमा जो देखाई देता है वह यह है कि ऊपर एक केंचुली-जैसा बारीक फरफराता-हुआ आवरण है और अन्दरके कपड़ेमेंसे एक दूसरे ही रंगका आभास आया करता है। छातीका बहुत-सा हिस्सा खुला हुआ है, और, खुली हुई बाहोंको कभी टेबिलपर, कभी कुरसीके हत्थेपर और कभी परस्पर जड़ित करके जतनकी भङ्गिमामें शिथिल छोड़ रखनेकी साधना सुसम्पूर्ण है। और जब सुमार्जित नाखूनोंसे रमणीय दो उँगलियोंके बीच सिगरेट दबाकर पीती है तो मालूम होता है वह जितना अलंकरणके अंगरूपमें है उतना धूम्रपानके लिए नहीं। सबसे ज्यादा जो बात मनमें दुश्चिन्ताका उद्रेक करती है वह उसके समुच्च खुरदार

जूतोंकी कुटिल भङ्गिमा, मानो बकरी-जातीय जीवके आदर्शको भूलकर नारीके पैरकी गढ़न देते वक्त सृष्टिकर्ता गलती कर गये हों, और अब मोची-द्वारा प्रदत्त पदोन्नतिकी विचित्र वक्रतासे धरणीको पीड़ित करके चलनेके द्वारा मानो एवोल्युशनकी त्रुटि ठीक की जा रही हो।

सिसी अभी तक बीचकी जगहमें है। अन्तकी डिग्री अभी तक नहीं मिली, पर प्रोमोशन लेती चली जा रही है। ठहाकेकी हँसीसे, बेहद खुशीसे, अनर्गल बातचीतसे उसमें सर्वदा एक प्रकारका चलन-ढलन उबाल लिया करता है, उपासक-मण्डलीमें उसका बहुत आदर है। राधिकाकी वय सन्धिके वर्णनमें देखा जाता है कि कहीं उसका भाव परिपक्व है तो कहीं अपरिपक्व, इसकी भी वही हालत है। एड़ीदार जूतोंमें युगान्तरका जयतोरण तो आ गया, पर माथेके अनवच्छिन्न जूड़ेमें अतीत युग रह गया है; पाँवोंकी ओर साड़ीका अरज दो-तीन इंच ओछा है, मगर ऊपरके ओढ़नेमें असवृतिकी सीमा अभी तक लज्जाकी ओर मुँह किये है; अकारण दस्ताने पहननेका अभ्यास है, किन्तु अभी भी एक हाथके बजाय दोनों हाथोंमें सोनेकी एक-एक चूड़ी पड़ी है; सिगरेट पीनेमें अब सिरमें चक्कर नहीं आता, पर पान खानेकी आसक्ति अब भी प्रबल है; बिस्कुटकी टीन में भरकर अचार या आम-पापड़ भेज दिये जायँ तो उसमें वह किसी तरह की आपत्ति नहीं करती; क्रिस्टमसके प्लेमपुडिंग और तीज त्योहारके दिन पिठेकी बनी चीज इन दोनोंमेंसे अन्तकी चीजपर ही उसकी लोलुपता कुछ ज्यादा है। फिरंगी नाचवालीसे उसने नाच सीखा है, पर नाचकी सभामें जोड़ी मिलाकर चक्कर-नाच नाचनेमें अब भी उसे जरा सकोच-सा होता है।

अमितके सम्बन्धमें लोगोंकी बातें सुनके ये लोग विशेष उद्विग्न हो

कर वहाँसे चले आये हैं। खासकर इनके परिभाषागत श्रेणी-विभागमें लावण्य गवरनेस है। पुरुषोंकी जात मारनेके लिए ही उनकी श्रेणीका स्पेशल क्रियेशन हुआ है। मनमें सन्देह नहीं है, रुपयेके लोभसे और सम्मानके लोभसे ही उसने अमितको कसके जकड़ लिया है, कोई छुड़ाना चाहे तो उस काममें स्त्रियोंको ही सम्मार्जन-पटु हस्तक्षेप करना पड़ेगा। चतुर्मुखने अपनी चार-जोड़ी आँखोंसे स्त्रियोंकी ओर कटाक्ष पात और पक्षपात एकसाथ ही किया होगा, इसीलिए स्त्रियोंके सम्बन्धमें विचार-बुद्धिमें उन्होंने पुरुषोंको ठोस बेवकूफ गढा है। इसीसे स्वजातिके मोहसे मुक्त आत्मीय स्त्रियोंकी सहायता बगैर मिले अनात्मीय स्त्रियोंके मोहजालसे पुरुषोंका उद्धार पाना इतना दुःसाध्य है।

फिलहाल इस उद्धारकी प्रणाली कैसी होनी चाहिए, इस विषयमें दो नारियोंने आपसमें एक परामर्श तय किया है। यह निश्चित है कि शुरूमें अमितको कुछ भी जानने नहीं दिया जायगा। उसके पहले ही शत्रुपक्ष और रणक्षेत्रको देख आना जरूरी है। उसके बाद देख लिया जायगा कि मायाविनीमें कितनी शक्ति है।

आते ही पहले-पहल नजर आया कि अमितके ऊपर एक फेर गहरा ग्राम्य रंग चढा हुआ है। इसके पहले भी इस दलके साथ अमितके भावका मेल नहीं था। फिर भी वह उस वक्त प्रखर नागरिक था, मजा-घसा चिलकता हुआ। अब सिर्फ खुली हवामें रंग कुछ मैला हो गया हो सो बात नहीं, बल्कि कुल मिलाकर उसपर मानो पेड़-पौधोंका आमेज-सा लग गया है। मानो वह कच्चा-सा हो गया है; और इन लोगोंकी रायसे कुछ बेवकूफ भी। उसका व्यवहार लगभग साधारण आदमी जैसा हो गया है। पहले वह जीवनके समस्त विषयोंके पीछे हँसीका हथियार लिये

फिरता था, अब उसके वह शौक नहींके बराबर है ; इसीको इन लोगोंने समझ लिया है अन्त-समयका लक्षण।

सिसीने एक दिन साफ-साफ ही कह दिया—"दूरसे हम समझ रही थीं कि तुम शायद खसिया होनेकी तरफ उतर रहे हो। अब देखती हैं कि तुम, जिसको कि कहते हैं 'ग्रीन', यहांके पाइनके पेड़ोंकी तरह, हो सकता है कि पहलेसे स्वास्थ्यकर दशामें हो, पर पहले जैसे इण्टरेस्टिंग् नहीं।"

अमितने वर्ड्स्वर्थकी कवितामें से नजीर पेश करते हुए कहा—"प्रकृतिके संसर्गमें रहते-रहते निर्वाक निश्चेतन पदार्थकी छाप लग जाया करती है शरीर-मनपर, जिसको कि कविने 'mute insensate things' कहा है।"

सुनकर सिसी सोचने लगी, निर्वाक निश्चेतन पदार्थके विषयमें हमें कोई शिकायत नहीं, जो लोग बहुत ज्यादा सचेतन हैं और जो लोग कहनेकी मधुर प्रगल्भतामें सुपटु हैं उन्हींके विषयमें हमें चिन्ता है।

इन लोगोंको आशा थी कि लावण्यके विषयमें अमित ही स्वयं बात छेड़ेगा। एक दिन, दो दिन, तीन दिन बीत गये, वह बिलकुल चुप है। सिर्फ एक बात अन्दाजसे समझ ली गई कि अमितकी आशा या साधकी नाव फिलहाल कुछ ज्यादा लहरोंमें पड़ी हुई है। इन लोगोंके बिस्तरसे उठके तैयार होनेके पहले ही अमित कहींसे घूमकर वापस आ जाता है, उसके बाद उसका चेहरा देखकर मालूम होता है कि आंधीकी हवामें कदलीवृक्षके उन पत्तोंकी तरह, जो खंड-खंड होकर लटकते-हिलते रहते हैं, उसका भाव भी शत-विदीर्ण हो रहा है। और भी ज्यादा चिन्ताकी बात यह है कि रवि-बाबूकी किताब भी किसी-किसीने उसके

बिस्तरपर पड़ी देखी है। भीतरके पन्नोंमें लावण्यके नाममे से शुरूका अक्षर लाल स्याहीसे कटा हुआ है। शायद नामके पारस-पत्थरने ही चीजकी कीमत बढ़ा दी है।

अमित क्षण-क्षणमे बाहर निकल जाया करता है। कहता है, भूख बढाने जा रहा हूँ। भूख कहाँ जानेसे बढती है, और भूख उसकी बहुत ही प्रबल है, यह औरोंसे छिपा नहीं था, मगर वे ऐसा नासमझीका भाव दिखाते कि हवाके सिवा शिलागमें और-भी कोई ऐसी चीज हो सकती है जो भूख बढा सकती है, इस बातको कोई सोच ही नहीं सकता। सिसी मन-ही-मन हँसती है, और केटी मन-ही-मन जला करती है। अपनी ही समस्या अमितके लिए इतनी बढ़कर थी कि बाहरके किसी चाचल्यकी तरफ ध्यान देनेकी उसमें शक्ति ही नहीं। इसीसे वह बिना किसी सकोचके इन सखी-युगलसे कहता, 'जा रहा हू एक झरनेकी तलाशमें।' परन्तु झरना किस श्रेणीका है, और उसकी गति किस तरफ है, इस विषयमें दूसरोंके मनमें कुछ धोखा या सन्देह है, इस बातको वह समझ ही नहीं पाता। आज कह गया है, 'एक जगह नारगीके शहदका सौदा करने जा रहा हू। दोनों लड़कियोंने अत्यन्त निरीह भावसे सरल भाषामे उससे कहा, इस अपूर्व मधुके विषयमे उनके दुर्दमनीय कुतूहल हो रहा है, वे भी साथ चलना चाहती हैं। अमितने कहा, 'मार्ग दुर्गम है, वहाँ पहुचना यान-वाहनकी हदके बाहरकी बात है।' इतना कहकर आलोचनाके प्रथम अशको तोड़के तुरत ही भाग निकला। इस मधुकरके डैनोंकी चचलताको देखकर दोनों सखियोंने तय कर लिया कि बस अब देर करना ठीक नहीं, आज ही नारगीके बगीचेपर धावा बोल देना चाहिए। इधर नरेन गया है घुड़दौड़के मैदानमें, सिसीको साथ ले जानेके लिए उसका

बहुत आग्रह था। सिली गई नहीं। इस निवृत्ति या मनाहीको झेलनेमें कितने शम-दमकी जरूरत है, इस बातको भुक्तभोगीके सिवा और कौन समझ सकता है?

१५

व्याघात

दोनों सखियाँ योगमायाके बगीचे जा पहुँचीं; और बाहरका दरवाजा पार होकर आगे बढीं तो वहाँ नौकरोंमे से कोई दिखाई नहीं दिया। सहनके पास पहुँचनेपर देख पड़ा कि मकानके चबूतरेपर एक छोटी टेबिल लगाकर शिक्षयित्री और छात्रा मिलकर कुछ पढ रही हैं। समझनेमे बाकी न रहा कि इनमे से बड़ी लावण्य है।

केटीने खटखट चढकर अंग्रेजीमें कहा—"दुखित हूँ।"

लावण्य कुरसी छोड़कर अलग खड़ी हो गई, बोली—"किसको चाहती हैं आप?"

केटीने एक क्षणमें अपनी दृष्टिको लावण्यके अपादमस्तकपर प्रखर झाड़ूकी तरह फेरकर कहा—"मिस्टर अमिट राये यहाँ आये हैं या नहीं देखने आई थीं।"

लावण्य सहसा समझ ही न सकी कि अमिट् राये किस जातिका जीव है। उसने कहा—"उनको तो हम नहीं जानतीं।"

चटसे दोनों सखियोंकी आँखोंमें बिजली-सी दौड़ गई और परस्पर आँखों-ही-आँखोंमे इशारा हो गया, चेहरोंपर तिरछी हँसीकी एक डोरी-सी खिच गई। केटीने झुँझलाकर सिर हिलाते हुए कहा—"हम तो जानती हैं, इस घरमें उनका आना-जाना है oftener than is good for him."

भाव-भङ्गिमा देकर लावण्य चौंक उठी, समझ गई कि ये कौन हैं और उसने कैसी गलती कर डाली है। लज्जित-सी होकर वह बोली—"माको बुलाये देती हूँ, उनसे आपको सब मालूम हो जायेगा।"

लावण्यके जाते ही सुरमासे केटीने सङ्क्षेपमे पूछा—"ये तुम्हारी टीचर हैं?"

"हाँ।"

"नाम शायद लावण्य है?"

"हाँ।"

"गॉट् मैचेस?"

सहसा दिआसलाईकी जरूरतका अन्दाजा न लगा सकनेके कारण सुरमा बातके मानी ही न समझ सकी। मुहकी ओर ताकती रही।

केटीने कहा—"दिआसलाई?"

सुरमा दिआसलाईका बक्स उठा लाई। केटीने सिगरेट सुलगाकर उसका कस खींचते हुए सुरमासे पूछा—"अंग्रेजी पढ़ती हो?"

सुरमा स्वीकृति-सूचक सिर हिलाकर तुरत ही भीतरकी तरफ तेजीसे चली गई। केटीने कहा—"गवरनेससे इस लड़कीने और जो भी सीखा हो, मैनर्स नहीं सीखा।"

इसके बाद दोनों सखियोंमें टिप्पणी होने लगी—"फेमस लावण्य! डिलीशस! शिलाग पहाड़को वोलकैनो बना डाला है, भूकम्पने अमिटके हृदय-तटपर दरारें कर दी हैं, इधरसे उधर तक! सिली! मेन आर फनी!"

सिसी ठहाका मारकर हँस उठी। इस हँसीमें उदारता थी। क्योंकि पुरुषोंकी मूर्खता उसके लिए कभी भी पश्चात्तापका कारण नहीं बनी। उसने तो पथरीली जमीनमें भी भूकम्प कराया है, उसे बिलकुल टूक-टूक

कर डाला है ; मगर यह कैसी दुनियासे न्यारी बात ! एक तरफ केटी जैसी लड़की, और दूसरी ओर यह विचित्र ढगके कपडे पहने हुए गवरनेस ! मुंहमें मक्खन दो तो न गले, जैसे भीगे लत्तोंकी पोटली हो : पास बैठो तो मनपर बरसाती बिस्कुटकी तरह फफूंदे पड़ जाते हैं। अमिट कैसे इसे एक मोमेण्टके लिए सह लेता है ?

"सिसी, तुम्हारे भाई-साहबका मन हमेशा ऊपरको पैर करके चला करता है। न-जाने कौनसी एक दुनियासे न्यारी उलटी बुद्धिसे इस लड़कीको सहसा उन्होंने एञ्जेल समझ लिया है !"

इतना कहकर केटीने टेबिलपर रखी हुई एलजेब्राकी किताबके सहारे सिगरेट रखकर अपनी चाँदीकी जञ्जीरदार शृंगारकी थैली निकालकर चेहरे पर जरा-सा पावडर लगा लिया ; और अजनकी पेन्सिलसे भौंहोंकी डोरियाँ जरा-कुछ उभार लीं। भाई साहबकी विवेकशून्यतापर सिसीको काफी गुस्सा नहीं आता, यहाँ तक कि भीतर-ही-भीतर जरा कुछ स्नेह-सा ही उमड़ आता है। साराका सारा गुस्सा पड़ता है जाकर पुरुषोंकी मुग्ध नयनविहारिणी जाली एञ्जेलोंपर। भइयाके सम्बन्धमें सिसीकी इस सकौतुक उदासीनतासे केटीका धैर्य टूट जाता है। तबीयत होती है कि उसे पकड़कर खूब जोरसे झकझोर डाले।

इतनेमें, सफेद गरदकी साड़ी पहने योगमाया निकल आई। लावण्य नहीं आई। केटीके साथ आया था आँखों तक ढक देनेवाले बड़े-बड़े बालोंवाला छोटा-सा 'टैब' नामधारी कुत्ता। उसने एक बार घ्राणेन्द्रियसे लावण्य और सुरमाका परिचय प्राप्त कर लिया था। योगमायाको देखकर सहसा उस कुत्तेके मनमें कुछ उत्साह पैदा हुआ। चटसे आगे बढ़कर उसने सामनेके दोनों पैरोंसे योगमायाकी निर्मल साड़ीपर धूल-मिट्टीके

हस्ताक्षर अङ्कित करके अपनी अकृत्रिम प्रीतिका परिचय दे दिया। सिसी उसकी गरदन पकड़कर खींच लाई केटीके पास ; केटीने उसकी नाकपर तर्जनी मारकर कहा—"नॉटी डॉग्।"

केटी कुरसीसे उठी ही नहीं। सिगरेट खींचती हुई अत्यन्त निर्लिप्त और तिरछे ढगसे जरा-सी गरदन टेढी करके योगमायाका निरीक्षण करने लगी। योगमायापर उसका विद्वेष या क्रोध शायद लावण्यसे भी ज्यादा है। उसकी धारणा है कि लावण्यके इतिहासमें एक दोष है। योगमाया ही मौसी बनकर अमितके माथे उसे मढ़ देनेका कौशल कर रही है। पुरुषोंको ठगनेके लिए ज्यादा बुद्धिकी जरूरत नहीं होती ; स्वय विधाताकी अपने हाथकी बनाई हुई 'अंधेरी' उनकी दोनों आँखोंपर जन्मसे ही बँधी हुई है।

सिसीने सामनेकी ओर जरा बढकर योगमायाको नमस्कारका जरा-सा आभास देते हुए कहा—"मैं सिसी हूँ, अमिकी बहन।"

योगमायाने जरा हँसते हुए कहा—"अमित मुझसे मौसी कहता है, उस नातेसे मैं तुम्हारी भी मौसी होती हूँ बेटी।"

केटीके रग-ढग देखकर योगमायाने उसकी तरफ ध्यान ही नहीं दिया। सिसीसे बोलीं—"आओ बेटी, भीतर चलके बैठो।"

सिसीने कहा—"वक्त नहीं है, सिर्फ पता लगाने आई थी कि अमित यहाँ आये हैं या नहीं।"

योगमायाने कहा—'अभी तक तो नहीं आया।"

"कब आयेंगे, मालूम है ?"

"ठीक नहीं कह सकती,—अच्छा मैं पूछ आऊँ जरा।"

केटी अपने आसनपर बैठे-बैठे ही तीव्र स्वरमें बोल उठी—"अभी जो

मास्टरनी यहाँ बैठी पढ़ा रही थी उसने तो ऐसा भाव दिखलाया कि वह अमिटको बिलकुल जानती ही नहीं ।"

योगमाया चक्करमें पड़ गईं। समझ गईं कि कहीं-न-कहीं कुछ गलतफहमी हो गई है। यह भी समझ गईं कि इनके आगे इज्जत रखना मुश्किल हो जायगा। दूसरे ही क्षणमें मौसीपनको वापस लेती हुई बोलीं—"सुना है अमित बाबू आपके होटलमें ही रहते हैं, उनकी खबर आप ही लोगोंको मालूम है।"

केटी जरा-कुछ स्पष्टरूपसे ही हँस दी; जिसे भाषामें कहा जाय तो कहना पड़ेगा, 'छिपा सकती हो, पर धोखा नहीं दे सकती।'

असल बात यह है कि शुरूमें ही लावण्यको देखकर और अमितको वह नहीं जानती यह सुनकर केटी मन-ही-मन आग-बबूला हो रही थी। पर सिसीके मनमें सिर्फ आशका है, जलन नहीं। योगमायाके सुन्दर चेहरेके गाम्भीर्यने उसके मनको आकर्षित कर लिया था। इसीसे, जब उसने देखा कि केटीने उनकी स्पष्ट अवज्ञा करते हुए कुरसी नहीं छोड़ी तब उसके मनमें कैसा-तो एक तरहका सकोच आने लगा। साथ ही किसी विषयमें केटीके विरुद्ध जानेकी हिम्मत नहीं होती, क्योंकि केटीके सिडीशन दमन करनेमें हाथ तेज चलते हैं; जरा भी विरोध वह नहीं सह सकती। कर्कश व्यवहार करनेमें उसे जरा भी सकोच नहीं होता। अधिकांश मनुष्य ही डरपोक होते हैं, निःसकोच दुर्व्यवहारके आगे वे हार मान लेते हैं। अपनी निरन्तरकी कठोरतापर केटीको एक तरहका गर्व है; जिसे वह मिठमुही भलमनसाहत कहती है उसका कोई लक्षण अपनी मित्रमण्डलीके किसीमें मिल जाय, तो उसे वह परेशान कर डालती है। रूढ़ताको वह निष्कपटता कहकर बड़ाई किया करती है; जो इस रूढ़ताके

आघातसे सकुचित हैं वे किसी कदर केटीको प्रसन्न रखकर आराम पाते हैं। सिसी उसी दलकी है; वह मन-ही-मन केटीसे जितनी ही डरती उतनी ही उसकी नकल करती; दिखाना चाहती कि वह भी दुर्बल नहीं है। पर हर वक्त उससे ऐसा बन नहीं पड़ता। केटीने ताड़ लिया था कि उसके व्यवहारके विरुद्ध सिसीके मनके एक कोनेमें मुह छिपानेवाली एक तरहकी आपत्ति छिपी हुई है। इसीसे उसने तय किया था कि योगमायाके सामने सिसीके इस संकोचको कड़ाईके साथ तोड़ देना होगा। वह कुरसीसे उठी और एक सिगरेट लेकर उसने सिसीके मुहसे लगा दी, और अपनी सुलगी हुई सिगरेट मुँहमें लिये हुए ही उसने सिसीकी सिगरेट सुलगानेके लिए मुँह बढ़ा दिया। इन्कार करनेकी सिसीको हिम्मत नहीं हुई। क्योंकि लौलकियोंमें जरा सुर्खी आ गई। फिर भी जबरदस्ती उसने एक ऐसा भाव दिखलाया कि जो लोग उनके पाश्चात्य भावपर जरा भी भौहें सिकोड़ते हैं उनके मुँहपर वह चुटकी बजानेको तैयार है—that much for it.

ठीक इसी समय अमित आ पहुँचा। लड़कियाँ तो देखके दग रह गई। जब वह होटलसे निकला था तब उसके सिरपर था फेल्ट हैट, और बदनपर था विलायती कुरता। यहाँ देखा गया कि वह धोती पहने हुए है और ऊपरसे दुशाला डाल रखा है। इस वेशान्तरका अड्डा था उसकी वही कुटिया। वहाँ किताबोंका एक शेल्फ है और कपड़ोंका एक ट्रङ्क; और योगमायाकी दी हुई एक आरामकुरसी भी। होटलमें दोपहरका खाना खाकर वह यहीं आ जाता है। आजकल लावण्यका कड़ा शासन है, सुरमाको पढ़ाते समय झरना या नारंगीकी खोजमें वहाँ किसीको

मुससे नहीं दिया जाता। सइलिए, तीसरे पहर साढ़े-चार बजे चाय-पानकी सभाके पहले इस घरमें दैहिक या मानसिक किसी प्रकारकी प्यास मिटानेका सौजन्य-सम्मत मौका अमितके लिए नहीं था। इतना समय किसी कदर काटकर कपड़े बदलकर वह यथानिर्दिष्ट समयपर ही यहाँ आता था।

आज होटलसे निकलनेके पहले ही कलकत्तेसे उसकी अगूठी आ गई। किस तरह उस अगूठीको वह लावण्यको पहनायेगा, इस विषयके पूरे अनुष्ठानकी वह बैठा-बैठा कल्पना करता रहा है। आज ठहरा उसका एक विशेष दिन। इस दिनको ड्योढीपर बिठाये नहीं रखा जा सकता। आज सब काम बन्द हो जाने चाहिए। मन-ही-मन उसने निश्चय कर रखा है कि लावण्य जहाँ बैठी पढा रही है वहाँ जाकर वह कहेगा, 'किसी दिन हाथीपर सवार होकर बादशाह आया था, किन्तु तोरण छोटा था। कहीं सिर न झुकाना पड़े इस वजहसे वह लौट गया था, नये बने हुए प्रासादमें उसने प्रवेश नहीं किया। आज आया है हमारा एक महान दिन, पर तुमने अपने अवकाशका तोरण छोटा कर रखा है; उसे तोड़ दो, राजा सिर उठाये ही तुम्हारे घरमें प्रवेश करेंगे।'

अमित यह बात भी ध्यानमें रखकर आया था कि उससे कहेगा, 'ठीक समयपर आनेका ही नाम पक्चुऐलिटी है; मगर घड़ीका समय ठीक समय नहीं है, घड़ी समयके नम्बर जानती है, उसकी कीमत कैसे जान सकती है वह?

अमितने बाहरकी ओर निगाह उठाकर देखा, बादलोंसे आकाश म्लान हो रहा है, उजालेकी शकल पांच-छै-बजे-जैसी हो रही है। अमितने घड़ी नहीं देखी, इस डरसे कि कहीं घड़ी अपने अभद्र इशारेसे आकाशका

प्रतिवाद न कर बैठे, जैसे बहुत दिनोंसे ज्वरसे पीड़ित बच्चेकी मा लड़केकी देह जरा ठंडी देखती है तो फिर उसे थर्मामीटर लगानेकी हिम्मत नहीं पड़ती। आज अमित निर्दिष्ट समयसे काफी पहले आ गया था। कारण, दुराशा निर्लज्ज होती है।

बरामदेके जिस हिस्सेमें बैठकर लावण्य अपनी छात्राको पढ़ाती है, रास्तेसे आते हुए वहाँ तक दिखाई देता है। आज देखा कि वह जगह सूनी है। अमितका मन आनन्दके मारे उछल उठा। अब उसने घड़ीकी तरफ नजर उठाकर देखा। अभी तो तीन बजके बीस ही मिनट हुए हैं। उस दिन उसने लावण्यसे कहा था, "नियम पालन करना मनुष्यका काम है और अनियम देवताओंका, मर्त्यमें हम नियमोंकी साधना इसीलिए करते हैं कि स्वर्गमें हमें अनियम-अमृतपर अधिकार प्राप्त हो। वह स्वर्ग जब कभी कभी मर्त्यमें ही दिखाई दे तब नियम तोड़कर उसको सलामी बजानी चाहिए।" उसे आशा हुई कि लावण्यने नियम तोड़नेके गौरवको समझ लिया शायद, लावण्यके मनपर सहसा आज किसी तरह विशेष दिनका स्पर्श लग गया है, साधारण दिनकी चहारदीवारी आज टूट गई है।

पास पहुँचकर उसने देखा कि योगमाया अपने कमरेके बाहर स्तब्ध-सी खड़ी हैं, और सिसी केटीके मुँहकी जलती हुई सिगरेटसे अपने मुँहमें लगी सिगरेट सुलगा रही है। योगमायाका यह असम्मान इच्छाकृत है इस बातको समझनेमें उसे देर न लगी। टैबी कुत्ता अपनी प्रथम मैत्रीके उच्छ्वासमें बाधा पाकर केटीके पैरोंके पास पड़ा जरा सो लेनेकी चेष्टा कर रहा था। अमितके आगमनसे उसका स्वागत करनेके लिए वह फिर असंयत हो उठा। सिसीने फिर उसे ताड़ना देकर समझा दिया कि सद्भाव प्रकट करनेकी इस प्रणालीका यहाँ आदर नहीं होनेका।

दोनों सखियोंकी ओर बगैर देखे ही अमितने दूरसे ही 'मौसी' कह-कर पुकारा ; और फिर उनके पैरोंके पास पड़कर पाँव छुए। इस समय इस तरह प्रणाम करना उसकी प्रथामें नहीं था। पूछा—"मौसीजी, लावण्य कहाँ है ?"

"क्या मालूम बेटा, घरमें ही कहीं होगी।"

"अभी तो उसके पढ़ानेका समय खतम नहीं हुआ ?"

"शायद इन लोगोंके आ जानेसे छुट्टी लेकर भीतर चली गई है।"

"चलो, एक दफे देख आयें वह क्या कर रही है।"

योगमायाको लेकर अमित भीतर चला गया। सामने जो और भी कोई सजीव पदार्थ है इस बातकी उसने सम्पूर्णतया उपेक्षा की।

सिसी जरा जोरसे बोल उठी—"अपमान ! चलो केटी, घर चलें।"

केटी भी कम नहीं जली। मगर आखिर तक देखे बगैर वह जाना नहीं चाहती।

सिसीने कहा—"कोई नतीजा नही निकलेगा !"

केटीकी बड़ी-बड़ी आँखें फट-सी गईं ; वह बोली—"निकलेगा कैसे नही, निकलके रहेगा नतीजा !"

और भी थोड़ा-सा समय बीत गया। सिसीने फिर कहा—"चलो बहन, अब जरा भी ठहरनेको तबीयत नहीं होती।"

केटी बरामदेमें धरना दिये बैठी रही। बोली—"आखिर यहाँसे तो उन्हें निकलना ही पड़ेगा।"

आखिर अमित वहाँ आया, साथमें ले आया लावण्यको। लावण्यके मुँहपर एक तरहकी निर्लिप्त शान्ति थी। उसमें जरा भी क्रोध नहीं, दम्भ नहीं, अभिमान नहीं। योगमाया पीछेके कमरेमें ही थीं, उनको

बाहर आनेकी इच्छा नहीं थी। अमित उन्हें भी पकड़ लाया। क्षणभरमें केटीकी नजर पड़ गई लावण्यके हाथकी अंगूठीपर। माथेका खून खौल उठा, आँखें लाल हो उठीं, पृथिवीको लात मारनेकी इच्छा होने लगी।

अमितने कहा—"मौसी, यह मेरी बहन है शमिता। पिताजीने शायद मेरे नामके साथ छन्द मिलाकर नाम रखा था; पर रह गया अमित्राक्षर। ये हैं केतकी, मेरी बहनकी सखी।"

इस बीचमें एक और उपद्रव खड़ा हो गया। सुरमाकी एक पाली हुई बिल्लीके बाहर निकलते ही टैबीने अपनी कुक्कुरीय नीतिमें उस स्पर्धाको युद्ध-घोषणाका वैध कारण मान लिया। एक बार अग्रसर होकर उसे फटकारता और फिर उसके उद्यत नाखून और फुसकारको देखकर युद्धके आशु-फलके सम्बन्धमें सशयापन्न होकर लौट आता। ऐसी अवस्थामें कुछ दूरसे ही अहिंस्र गर्जन-नीतिको ही निरापद वीरता प्रकट करनेका उपाय समझकर उसने जोर-शोरसे चीत्कार करना शुरू कर दिया। बिल्ली उसका कुछ प्रतिवाद किये बगैर ही पीठ फुलाकर चली गई। अब केटीसे सहा नहीं गया। प्रबल आक्रोशसे कुत्तेकी कान ऐंठने लगी वह। इस कान ऐंठनेका बहुत-सा अंश अपने भाग्यके प्रति ही था। कुत्तेने क्याँव-क्याँव करके इस असद्व्यवहारके सम्बन्धमें अपना तीव्र अभिमत प्रकट किया। भाग्य चुपके-चुपके हँस दिया।

इस शोर-गुलके जरा-कुछ थम जानेपर अमितने सिसीको लक्ष्य करके कहा—"सिसी, इन्हींका नाम है लावण्य। मुझसे तुमने इनका नाम कभी नहीं सुना, पर मालूम होता है औरोंके मुँहसे सुना होगा। इनसे मेरा ब्याह होना तय हो गया है, कलकत्तेमें अगहनमें होगा।"

केटीने अपने चेहरेपर हँसी खींच लानेमें देर नहीं की। बोली—"आई कॉनग्रैचुलेट। नारंगीका मधु पानेमें विशेष बाधा नहीं हुई मालूम होता है, रास्ता मुश्किल नहीं था, मधु उछलकर खुद ही आ गया है मुहके पास।"

सिसी अपने स्वाभाविक अभ्यासके अनुसार हि-हि करके हँस उठी।

लावण्य समझ गई कि उसकी बातमें तीखी चुटकी है, पर उसके मानी वह पूरे नहीं समझ सकी।

अमितने उससे कहा—"आज होटलसे चलते वक्त इन लोगोंने मुझसे पूछा था, कहाँ जा रहे हो। मैंने कहा था, जगली मधुकी खोजमें। इसीसे ये हँस रही हैं। यह मेरा ही दोष है, मेरी कौनसी बात हँसीकी नहीं है, इसे लोग जान नहीं पाते।"

केटीने शान्त स्वरमें ही कहा—"नारंगीका मधु पाकर तुम्हारी तो जीत हो गई, अब मेरी भी जिससे हार न हो ऐसा करो।"

"क्या करना होगा, बताओ?"

"नरेनसे मेरी एक होड़ लगी हुई है। उसने मुझसे कहा था, जेण्टिलमैन लोग जहाँ जाते हैं वहाँ कोई भी तुम्हें नहीं ले जा सकता, तुम 'रेस' देखने हरगिज नहीं जा सकते। मैंने अपनी हीरेकी अगूठीकी होड़ लगाई है, तुम्हें 'रेस'में ले ही जाऊंगी। इस देशमें जितने भी झरना हैं, जितनी भी मधुकी दूकानें हैं, सबकी खोज कर-कराके अन्तमें यहाँ आकर तुम्हारे दर्शन मिले। तुम्हीं कहो, बहन सिसी, कितना फिरना पड़ा है जगली बतकके शिकारकी कोशिशमें, जिसको कि अंग्रेजीमें कहते हैं wild goose!"

सिसी कुछ जवाब बिना दिये हँसने लगी। केटी कहने लगी—"याद है वह कहानी,—एक दिन तुम्हींसे सुनी थी, अमिट। कोई एक पर्सियन

फिलॉसॉफर अपने पगड़ी-चोरका पता न लगा सकनेके कारण अन्तमें कबरिस्तानमे जा बैठा था। कहता था, भागके जायगा कहाँ। मिस लावण्य, जब कह रही थीं कि तुम्हें नहीं जानतीं, मुझे चक्करमे डाल दिया था, पर मेरे मनने कहा, घूम-फिरकर उन्हें इस कबरिस्तानमें आना ही पड़ेगा।"

सिसी ठहाका मारकर हँस पड़ी।

केटीने लावण्यसे कहा—"अमिट आपका नाम जबानपर नहीं लाये, मधुर भाषामें घुमाकर बोले, नारंगीका मधु! आपकी बुद्धि बहुत ही ज्यादा सरल है, घुमाकर कहनेकी तरकीब जबान तक नहीं आती, चटसे कह बैठीं, अमिटको जानती ही नहीं! फिर भी सन-डे स्कूलके विधानके अनुसार फल नहीं हुआ, दण्डदाताने आपलोगोंको कोई दण्ड ही नहीं दिया, मुश्किल रास्तेका मधु भी एक जनेने एक ही घूटमे निगल लिया, और बिन-जानेको भी एक जनेने एक ही दृष्टिमें जान लिया। अब क्या सिर्फ मेरे ही भाग्यमें हार बदी है? देखो तो सिसी, कैसा अन्याय है!"

सिसी फिर पहलेकी तरह जोरसे हँस दी। टैबी कुत्तेने भी उच्छ्वासमे शरीक होनेको अपना सामाजिक कर्तव्य समझकर विचलित होनेका लक्षण दिखाया। तीसरी बार उसे दमन किया गया।

केटीने कहा—"अमिट, तुम जानते हो, हीरेकी अंगूठीको अगर हार जाऊँ, तो फिर संसारमें मेरे लिए सान्त्वना न रह जायगी। यह अंगूठी किसी दिन तुम्हींने दी थी। एक क्षणके लिए भी मैंने यह हाथसे नहीं उतारी, यह मेरी देहके साथ एक हो गई है। आखिरकार आज इस शिलांग पहाड़पर क्या इसे होड़में खोना पड़ेगा?"

सिसीने कहा—"होड़ बदने ही क्यों चली थीं बहन?"

"मन-ही-मन अपनेपर अहंकार था ; और आदमीपर था विश्वास। अहंकार टूट गया ; इस बारकी मेरी 'रेस' खतम हो गई, मेरी ही हार हुई। मालूम होता है अमिटको अब मैं राजी नहीं कर सकती। पर इस तरह अद्भुत ढंगसे ही अगर खोना था, तो उस दिन इतने आदरसे अंगूठी दी ही क्यों थी? उस देनेमें क्या कोई बन्धन नहीं था? इस देनेमें क्या यह वचन नहीं था कि मेरा अपमान तुम कभी न होने दोगे?"

कहते-कहते केटीका गला भर आया, बड़ी मुश्किलसे उसने आँसू सम्हाल लिये।

आज सात साल हो गये, केटीकी उमर उस समय अठारह थी। उस दिन यह अंगूठी अपनी उंगलीसे खोलकर उसे पहना दी थी। तब वे दोनों ही इंगलैण्डमें थे। ऑक्सफोर्डमें एक पञ्जाबी युवक था केटीके प्रणयमें मुग्ध। उस दिन आपसमें अमितने उस पंजाबीके साथ नदीमें बोट-रेस (नावकी होड़) खेली थी। अमितको ही जीत हुई। जून महीनेकी ज्योत्स्नामें सारा आकाश मानो बातें करने लग गया था, बाग-बगीचों और मैदानोंमें फूलोंके अनेकों वैचित्र्यसे धरणीने मानो अपना धैर्य खो दिया था। उन्हीं क्षणोंमें अमितने केटीकी उंगलीमें अंगूठी पहना दी थी। उसमें बहुतसी बातें अनुक्त या बिन-कही थीं, किन्तु कोई भी बात छिपी हुई नहीं थी। उस दिन केटीके चेहरेपर शृंगार या प्रसाधनका प्रलेप नहीं लगा था, उसकी हँसी सहज-स्वाभाविक थी, भावके आवेगमें उसका चेहरा सुर्ख-होनेमें बाधा नहीं मानता था। अंगूठी पहना चुकनेके बाद अमितने उसके कानमें कहा था—

"Tender is the night
And haply the queen moon is on her throne.

केटी तब ज्यादा बात करना नहीं सीखी थी। एक गहरी साँस लेकर मन-ही-मन सिर्फ इतना कहा था, "मॉन् आमी", फरासीसी भाषामें जिसके मानी होते हैं—'प्रियतम'।

आज अमितकी जबान भी जवाब देनेमें अटक गई। सोच ही न सका कि क्या कहे।

केटीने कहा—"होड़में अगर हार ही गई हूँ तो यह मेरा हमेशाकी हारका चिह्न तुम्हारे ही पास रहने दो, अमिट। अपने पास रखकर इसे मैं झूठ नहीं बोलने दूँगी।"

इतना कहकर अगूठी खोलकर उसने टेबिलपर रख दी और तुरन्त ही वहाँसे आँधीकी तरह तेजीसे चल दी। कलई-किये-हुए चेहरेपरसे आँसुओंकी धारा बहने लगी।

१६

मुक्ति

एक छोटी-सी चिट्ठी आई लावण्यके पास, शोभनलालकी लिखी हुई, "कल रातको मैं शिलाग आ रहा हूँ। अगर मुलाकात करनेकी अनुमति दो तो मिलने आऊँगा। अगर न दो, तो कल ही वापस चला आऊँगा। तुमसे दण्ड मिला है, किन्तु कब मैंने क्या अपराध किया है, आज तक मैं स्पष्टरूपसे समझ न सका। आज आया हूँ तुम्हारे पास उस बातको सुननेके लिए, नहीं तो मनमें शान्ति नहीं मिलती। डरना मत। मेरी और कोई भी प्रार्थना नहीं है।"

लावण्यकी आँखें भर आईं। आँसू पोंछ डाले उसने। चपचाप बैठी

मुड़कर देखती रही अपने अतीतकी ओर। जो अंकुर बड़ा होकर उठ सकता था, जिसको कि उसने उगते ही दबा दिया, बढने नहीं दिया, उसकी उस कच्चेपनकी करुण भीरुताकी उसे याद आ गई। अब तक वह उसके सम्पूर्ण जीवनपर अधिकार करके उसे सफल कर सकता था। किन्तु उस दिन उसमें था ज्ञानका गर्व; विद्याकी एकनिष्ठ साधना, उद्धत स्वातन्त्र्यबोध। उस दिन अपने पिताकी मुग्धताको देखकर प्रेमको कमजोरी बताकर उसने मन-ही-मन उसे धिक्कारा है। प्रेमने आज उसका बदला लिया है, अभिमान आज धूलमें मिल गया। उस दिन जो बात सहजमें हो सकती थी साँस-उसासकी तरह, सरल हँसीकी तरह, आज वह कठिन हो उठी। उस दिनके जीवनके इस अतिथिको दोनों हाथ पसारकर ग्रहण करनेमें आज बाधा आ पड़ती है और उसे त्यागनेमें भी छाती फटती है। याद उठ आई अपमानित शोभनलालकी उस दिनकी संकुचित व्यथित मूर्तिकी। उसके बाद कितने दिन बीत गये, युवकका वह प्रत्याख्यात प्रेम इतने दिन किस अमृतसे जीवित रहा? अपने ही आन्तरिक महात्म्यसे।

लावण्यने अपनी चिट्ठीमें लिखा—"तुम मेरे सबसे बड़े बन्धु हो। इस बन्धुत्वके पूरे दाम दे सकूं ऐसा धन आज मेरे हाथमें नहीं है। तुमने किसी दिन दाम नहीं चाहे; आज भी तुम अपनी देनेकी चीज ही देने आये हो, बगैर किसी दावेके। 'नहीं चाहिये' कहकर लौटा सकूं ऐसी शक्ति मुझमें नहीं है, और न ऐसा अहंकार ही है।"

चिट्ठी लिखकर भेज दी; इतनेमें अमितने आकर कहा—"बन्या, चलो आज दोनों जने घूम आयें।"

अमितने डरते हुए ही कहा था, सोचा था कि लावण्य शायद चलनेको राजी नहीं होगी।

लावण्यने सहज ही में कहा—"चलो।"

दोनों जने चल दिये। अमितने कुछ दुविधाके साथ ही लावण्यका हाथ अपने हाथमें लेनेकी चेष्टा की। लावण्यने जरा भी बाधा न देकर हाथ पकड़ने दिया। अमितने हाथको जरा जोरसे मसक दिया। उसीसे मनकी बात जितनी भी कुछ व्यक्त हो सकती थी उससे ज्यादा उसकी जबानपर कुछ भी नहीं आया। चलते-चलते उस दिनकी उसी जगहपर आ पहुँचे जहाँ जंगलमें सहसा जरा खुला हुआ-सा था। एक वृक्षशून्य पहाड़की चोटीपर सूर्य अपना अन्तिम स्पर्श छुआकर उतर गया। अति-सुकुमार हरियालीकी आभा धीरे-धीरे सुकोमल नीलिमामें विलीन हो गई। दोनों जने वहाँ ठहरकर उसी ओर मुह किये खड़े रहे।

लावण्यने आहिस्तेसे कहा—"एक दिन एक-जनीको जो अंगूठी पहनाई थी, मेरे द्वारा उसकी वह अंगूठी क्यों खुलवाई?"

अमितने व्यथित होकर कहा—"तुम्हें सब बातें समझाऊं कैसे बन्या? उस दिन जिसे अंगूठी पहनाई थी और आज जिसने खोलकर दे दी, वे दोनों क्या एक ही हैं?"

लावण्यने कहा—"उनमेंसे एक सृष्टिकर्ताके लाड़-प्यारसे बनी हुई थी, और दूसरी तुम्हारे अनादरसे बनी है।"

अमितने कहा—"बात सम्पूर्णतया ठीक नहीं है। जिस आघातसे आजकी केटी बनी है उसका दायित्व सिर्फ मेरे अकेलेपर नहीं है।"

"मगर, मीता, अपनेको जिसने एक दिन सम्पूर्णरूपसे तुम्हारे हाथ सौंप दिया था, उसे तुमने अपनी बनाकर क्यों न रखा? किसी भी कारणसे हो, पहले तुम्हारी मुट्ठी ढीली हुई है, उसके बाद अन्य दस-पांचके मनके माफिक वह अपनेको सजाने बैठ गई। आज तो देखती हूं, वह विलायती दूकानकी

पुतलीकी तरह हो गई है ; ऐसा सम्भव न होता अगर उसका हृदय जीता रहता। रहने दो इन सब बातोंको। तुमसे मेरी एक प्रार्थना है। माननी पड़ेगी।"

"बोलो, जरूर मानूंगा।"

"कमसे कम एक सप्ताहके लिए तुम अपने दलको लेकर चेरापुञ्जी घूम आओ। उसे आनन्द अगर न भी पहुंचा सको, तो कमसे कम आमोद तो दे ही सकते हो।"

अमित जरा चुप रहकर बोला—"अच्छा।"

उसके बाद लावण्यने अमितकी छातीपर माथा टेककर कहा—"एक बात तुमसे कहती हूं मीता, फिर कभी न कहूंगी। तुम्हारे साथ मेरा जो अन्तरंग सम्बन्ध है उसके लिए तुमपर लेशमात्र दायित्व नहीं। मैं नाराजीसे नहीं कह रही, अपने सम्पूर्ण प्यारसे ही कह रही हूं, मुझे तुम अंगूठी मत दो, कोई चिह्न रखनेकी कुछ भी जरूरत नहीं। मेरे प्रेमको निरंजन ही रहने दो, बाहरकी रेखा बाहरकी छाया उसपर नहीं पड़ेगी।"

इतना कहकर उसने अपनी उंगलीसे अंगूठी खोलकर आहिस्तेसे अमितके हाथमें पहना दी। अमितने उसमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं दी।

सन्ध्याकी इस पृथिवीने जैसे अस्त-रश्मिसे उद्भासित आकाशकी ओर चुपकेसे अपना मुँह उठाया, ठीक वैसी ही नीरवतासे, वैसी ही शान्त दीप्तिसे लावण्यने अपना मुँह उठा दिया अमितके झुके हुए मुँहकी ओर।

१७

आखिर

सातवाँ दिन बीतते ही अमित वापस आकर योगमायाके उस मकानमें गया। घर बन्द था, सब-कोई चले गये हैं। कहाँ गये, इसका कोई पता-ठिकाना नहीं छोड़ गये।

उसी यूकैलिप्टस पेड़के नीचे अमित जा खड़ा हुआ, कुछ देर तक शून्य मनसे वहीं घूमता रहा। परिचित मालीने आकर सलाम किया; और पूछा—"घर खोल दूं बाबू सा'ब? भीतर बैठेंगे?'

अमितने जरा कुछ दुविधाके साथ कहा—"हाँ।"

भीतर जाकर वह लावण्यके बैठनेके कमरेमें गया। कुरसी टेबिल शेल्फ सब-कुछ है, वे पुस्तकें नहीं हैं। फर्शपर दो-एक फटे-हुए रीते लिफाफे पड़े हैं, उनपर अनजान हरूफोंमें लावण्यका नाम और पता लिखा है दो-चार इस्तेमाल किये हुए निब पड़े हैं और क्षयप्राप्त एक अत्यन्त छोटी पेन्सिल टेबिलपर पड़ी है। पेन्सिल उठाकर उसने जेबमें रख ली। उसके बगलमें ही सोनेका कमरा था। लोहेके पलगपर सिर्फ एक गद्दी और आईनेकी टेबिलपर एक रीती तेलकी शीशी पड़ी है। दोनों हाथ माथेसे लगाकर अमित उस गद्दीपर लेट गया, लोहेका पलग आवाज कर उठा। उस कमरेमें एक तरहकी गूगी शून्यता-सी थी। उसे पूछनेसे वह कुछ जवाब ही नहीं दे सकती थी। वह एक मूर्छा-सी थी, जो कभी भी नहीं टूट सकती।

इसके बाद, शरीर और मनपर तिरुद्यमका एक बोझ-सा लेकर अमित अपनी कुटियाकी ओर चल दिया। जो कुछ जैसा वह रख गया था सब

वैसा ही पड़ा हुआ है। यहाँ तक कि योगमाया अपनी आरामकुरसी भी वापस नहीं ले गईं। समझ गया, वे स्नेहसे ही वह कुरसी उसे दे गई हैं। उसे ऐसा लगा जैसे उसे सुनाई दिया हो, उनका वह शान्त मधुरस्वरका आह्वान—'बेटा'। उस कुरसीके सामने सिर टेककर अमितने प्रणाम किया।

सारे शिलाश-पहाड़की श्री आज चली गई है। अमितको अब कहीं भी सान्त्वना नहीं मिली।

१८

आखिरी कविता

यतिशंकर कलकत्तेके एक कॉलेजमें पढता है। रहता है कोल्हूटोला प्रेसिडेन्सी कॉलेजके मेसमें। अमित उसे अक्सर अपने घर ले आया करता है, खिलाता-पिलाता है, उसके साथ तरह-तरहकी किताबें पढ़ता है, तरह-तरहकी अद्भुत बातोंसे उसके मनको चौंका दिया करता है, मोटरमें बिठाकर उसे घुमा लाता है।

फिर, कुछ दिनों तक यतिशंकरको अमितकी कोई निश्चित खबर ही नहीं मिली। कभी सुना कि वह नैनीतालमें है, कभी मालूम हुआ कि उटकमण्डमें। एक दिन सुना कि अमितका एक मित्र कह रहा है, वह आजकल केटी मित्तिरका बाहरी रंग छुड़ानेमें कमर बाँधकर जुट पड़ा है। काम मिला है मनचाहा, वर्ण बदलनेका। अब तक अमित मूर्ति गढ़नेका शौक मिटाया करता था बातोंसे, आज उसे मिल गया है

सजीव आदमी। वह आदमी भी एक-एक करके अपने ऊपरकी रंगीन पपड़ियाँ छुड़ा फेंकनेमें राजी है, अन्तमें फल प्राप्त होगा इस आशासे। अमितकी बहन सिसीका शायद कहना है कि केटीको बिलकुल पहचाना ही नहीं जा सकता, अर्थात् वह बहुत ज्यादा स्वाभाविक-सी दीख रही है। मित्रमण्डलीमें उसने कह दिया है कि उसे अब 'केतकी' कहा जाय, यह उसके लिए निर्लज्जता है, जो स्त्री किसी समय बारीक शान्तिपुरी साड़ी पहना करती थी उस लज्जावतीके हाल-फैशनकी पोशाक पहननेके समान। अमित शायद एकान्तमें उसे 'केतकी' कहके सम्बोधित करता है। लोग इस बातकी भी कानाफूसी करते हैं कि नैनीतालके सरोवरमें नाव बहाकर केटीने उसकी पतवार थामी है और अमितने उसे पढ़के सुनाई है रवीन्द्रकी "निरुद्देश यात्रा"। परन्तु लोग क्या नहीं कहते। यतिशंकरने समझ लिया कि अमितका मन पाल चढ़ाकर चल दिया है छुट्टी-तत्त्वके बीच दरियामें।

अन्तमें अमित लौट आया। शहरमें बात फैल गई कि केतकीके साथ उसका ब्याह है। और मजा यह कि अमितके अपने मुंहसे एक दिन भी यतीने इसका जिक्र नहीं सुना। अमितके व्यवहारमें भी बहुत-कुछ रद्दो-बदल हो गया है। पहलेकी तरह अब भी वह यतीको अंग्रेजी किताबें खरीदकर उपहारमें दिया करता है, पर उसके साथ शामको बैठकर उन-सब किताबोंकी आलोचना नहीं करता। यती समझ गया है कि आलोचनाकी धारा अब दूसरे एक नये रास्तेसे बह रही है। आजकल मोटरमें घूमने जानेके लिए वह यतीको नहीं पुकारता। यतीकी उमरमें यह बात समझना कठिन नहीं है कि अमितकी "निरुद्देश-यात्रा"की पार्टीमें तीसरे व्यक्तिके लिए जगह होना असम्भव है।

यतीसे अब रहा नहीं गया। अमितसे उसने खुद ही अपनी तरफसे गर्ज दिखाकर पूछा—"अमित भाई सा'ब, सुना है कि मिस केतकी मित्रके साथ तुम्हारा ब्याह है ?"

अमितने जरा चुप रहकर कहा—"लावण्यको क्या यह बात मालूम हो गई है ?"

"नहीं, मैंने उन्हें नहीं लिखा। तुम्हारे मुहसे पक्की खबर नहीं मिली, इसीलिए चुप हू।"

"खबर सच है, पर लावण्य शायद गलत समझ जायेंगी।"

यतीने हँसते हुए कहा—"इसमें गलत समझनेकी गुंजाइश कहाँ है ? ब्याह अगर करोगे तो ब्याह ही करगे, सीधी बात है।"

"देखो यती, आदमीकी कोई बात ही सीधी नहीं होती। हम डिक्सनरीमें जिस शब्दका एक मानी बाँध देते हैं, मानव जीवनमे उस मानीके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, जैसे समुद्रकी गोदमे गगाके।"

यतीने कहा—"अर्थात् तुम कह रहे हो कि विवाह विवाह नही है ?"

"मैं कह रहा हूँ विवाहके हजार मानी हैं, आदमीके साथ मेल मिलाकर उसके मानी होते हैं, आदमीको अलग करके उसके मानी लगाये जायें तो पहेली बन जाती है।"

"तुम अपने खास मानी ही क्यों नहीं बता देते ?"

"संज्ञासे नहीं बताया जा सकता, जीवनसे बताना पडेगा। अगर कहू कि उसके मूल मानी हैं प्रेम, तो भी और-एक विषयमें जा पड़ूगा, 'प्रेम' शब्द 'विवाह' शब्दकी अपेक्षा और भी अधिक जीवित है।"

"तो भाई साहब, इस तरह तो बात ही बन्द कर देनी पड़ेगी। शब्दको कँधेपर लादे मानीके पीछे-पीछे दौड़ू और मानी बायें पीछा करें

तो बायें ओर दाहने पीछा करू तो दाहने भागने लगे, तब तो काम नहीं चल सकता।"

"भाई, तुमने बेजा नहीं कहा। मेरे साथ रहते-रहते तुम्हारी जबान खुल गई है। ससारमे किसी भी तरह काम चलाना ही पड़ता है, इसलिए शब्दोंकी अत्यन्त जरूरत है। जिन सत्योंको शब्दोंमें नहीं लाया जा सकता, व्यवहारके बाजारमे उन्हींको उाँट देता हूँ, और बातको जाहिर करता हूँ, इसके सिवा और उपाय ही क्या है? उससे मीमासा भले ही ठीक न हो, पर आँख मीचकर काम चलाया जा सकता है।"

"तो क्या आजकी बातको बिलकुल ही खतम कर डालना होगा?"

"यह आलोचना अगर महज ज्ञानकी खातिर हो, हृदयके लिए न हो, तो खतम करनेमें कोई दोष नहीं।"

"मान लो, हृदयकी खातिर ही है।"

"शाबाश, तो सुनो।"

यहाँ जरा-सी टिप्पणी लगा देनेमें कोई दोष न होगा। यतिशकर आजकल अक्सर अमितकी छोटी बहन सिसीके हाथकी दी हुई चाय पीआ करता है। अनुमान किया जा सकता है कि उसी वजहसे उसके मनमें इस बातका जरा भी क्षोभ नहीं कि अमितने उसके साथ तीसरे पहर साहित्यालोचना और शामको मोटरमें घूमना बन्द कर दिया है। अमितको उसने सर्वान्त-करणसे क्षमा कर दिया है।

अमित कहने लगा—"आँक्सिजेन एक रूपमें तो बहती रहती है हवामें अदृश्य रहकर, उसके बिना प्राण नहीं बच सकते; और दूसरे रूपमें वह कोयलेके साथ जलती रहती है, वह आग जीवनके अनेक कामोंमें आवश्यक है, दोनोंमेंसे किसीको भी अलग नहीं छाँटा जा सकता। अब समझ गये?"

"पूरी तरह नहीं समझा, पर समझनेकी इच्छा जरूर है।"

"जो प्रेम व्याप्तरूपसे आकाशमें मुक्त रहता है, अन्त:करणमें वह देता है सग यानी साथ, और जो प्रेम विशेषरूपसे प्रतिदिनके सब-कुछसे युक्त रहता है, ससारमें वह देता है आसग यानी सहवास। मैं दोनों ही चाहता हू।"

"तुम्हारी बात ठीक समझ रहा हूं या नहीं, यही नहीं समझमें आता। और जरा खुलासा करके बताओ भाई साहब?"

अमितने कहा—"एक दिन मैंने अपने सम्पूर्ण डैने फैलाकार पाया था अपना उड़नेका आकाश; आज मैंने पाया है अपना छोटा-सा घोसला,—डैने समेटकर आ बैठा हूँ उसमें। पर मेरा आकाश भी ज्योंका त्यों बना हुआ है।'

"मगर ब्याहसे तुम्हारे वह सग और आसग क्या एकसाथ ही नहीं मिल सकते?"

"जीवनमें बहुतसे सुयोग मिल सकते हैं, पर मिलते नहीं। जिस आदमीको आधा राज्य और राजकन्या दोनों एक-ही-साथ मिल जाते हैं उसका भाग्य अच्छा है; जिसे वह नहीं मिलता, दैवसे अगर उसे दाहनी तरफसे मिले राज्य और बाईं तरफसे मिल जाय राजकन्या, तो वह भी कम सौभाग्यकी बात नहीं।"

"मगर—"

"मगर तुम जिसे समझते हो रोमान्स, उसमें कमी या घाटा पड़ जाता है यही न? जरा भी नहीं। कहानीकी किताबोंसे ही रोमान्सकी बँधी हुई खूराक उसीके साँचेमें ढालकर जुटानी पड़ेगी क्या? हरगिज नहीं। अपना रोमान्स मैं खुद बनाऊंगा। मेरे स्वर्गमें भी रोमान्स रहेगा, और मर्त्यमें

भी रोमान्सकी सृष्टि करूंगा मैं। जो लोग इनमेंसे एकको बचानेके लिए दूसरेको दिवालिया बना देते हैं, उन्हींको तुम कहते हो रोमाण्टिक ! वे या तो मछलीकी तरह पानीमें तैरते हैं, या बिल्लीकी तरह जमीनपर घूमते हैं, अथवा चमगादड़ोंकी तरह आकाशमें फिरते हैं। मै रोमान्सका परमहंस हूँ। प्रेमके सत्यको मैं एक ही शक्तिसे जल-स्थलमें उपलब्ध करूंगा, और आकाशमें भी। नदीकी रेतीपर मेरा रहा पक्का दखल, और मानसकी ओर जब मैं यात्रा करूंगा तब वह होगी आकाशके खुले रास्तेसे। जय हो मेरी केतकीकी, और सभी तरफसे धन्य हो अमित राय।"

यतिशंकर स्तब्ध होकर बैठा रहा, शायद बात उसे ठीक जंची नहीं। अमितने उसका चेहरा देखकर मुसकराते हुए कहा—"देखो भाई, सब बातें सबके लिए नहीं होतीं। मैं जो कुछ कह रहा हूं, हो सकता है कि वह सिर्फ मेरी ही बात हो। उसे तुम अपनी बात समझके कहीं गलती कर बैठे, तो बिलकुल गलत समझ बैठोगे। मुझे बुरा-भला कह बैठोगे। एककी बातपर दूसरेके मानी लादे जानेके कारण ही दुनियामें मारपीट और खूनखराबी हुआ करती है। अब मैं अपनी बातको साफ साफ ही कह दूं तुमसे। रूपकके तौरपर ही कहना पड़ेगा, नहीं तो, इन सब बातोंका रूप ही चला जाता है, शब्द लज्जित हो उठते हैं। केतकके साथ मेरा सम्बन्ध प्रेमका ही है, मगर वह मानो घड़ेमें भरा हुआ पानी है, रोज भरूंगा और रोज काममें लाऊंगा। और, लावण्यके साथ मेरा जो प्रेम है वह सरोवरके रूपमें बना रहा, वह घर लानेकी चीज नहीं, मेरा मन उसमें तैरा करेगा।"

यतीने जरा सकुचित होते हुए कहा—"लेकिन अमित भाई-साहब, दोनोंमें से एक ही को चुन लेना क्या ठीक नहीं?"

"जिसके लिए ठीक है उसीके लिए है, मेरे लिए नहीं।"

"पर श्रीमती केतकीको अगर—"

"वे सब जानती हैं। सम्पूर्णतया समझती हैं या नहीं, मैं नहीं कह सकता। पर मैं अपने सम्पूर्ण जीवनसे उन्हे यही समझाऊंगा कि उन्हे कहींसे भी वंचित नहीं रख रहा, धोखा नहीं दे रहा। उन्हे यह भी समझना होगा कि लावण्यका उनपर उपकार है, वे उनकी ऋणी हैं।"

"सो होने दो, श्रीमती लावण्यको तो तुम्हारे ब्याहकी खबर जतानी ही पड़ेगी।"

"जरूर जताऊंगा। मगर उसके पहले एक चिट्ठी लिखना चाहता हूं, उसे तुम पहुचा दोगे?"

"पहुचा दूंगा।"

अमितने चिट्ठीमें लिखा :—

उस दिन सध्याके समय रास्तेके आखिरमें आकर जब खड़ा हुआ था तो कवितासे उस यात्राका अन्त कर दिया था। आज भी आकर रुक गया हू एक रास्तेके आखिरमे। इस आखिर या शेष मुहूर्तपर एक कविता रख जाना चाहता हूं। इसपर और किसी बातका भार सहन नहीं होगा। अभागा निवारण चक्रवर्ती जिस दिन पकड़में आया उसी दिन मर गया था, अत्यन्त नाजुक चलचर मछलीकी तरह। इसीसे और कोई उपाय न देखकर तुम्हारे ही कविपर भार सौंप रहा हू अपनी आखिरी बात तुम्हें जतानेके लिए :—

देखा था किसी क्षण
तुम्हारे अन्तर्धान - पटपर
तुम्हारा, हाँ, तुम्हारा ही
रूप चिरन्तन,
हृदयके अदृश्य-लोकमें
हुआ आज
तुम्हारा अन्तिम आगमन।
पाई है चिरस्पर्शमणि
तुम ही कर गई पूर्ण
स्वय मेरा सूनापन।

अत्यन्त निराश प्राण
जीवन था अन्धकार
इतनेमे आई तुम
पाया तुम्हारा प्यार।
करमें ले आई तुम
सध्याका देव - दीप
मेरे मन-मन्दिरमें
कर गई प्रकाश-दान,
प्रेम हुआ भासमान।
विच्छेदकी होमाग्निसे
पुजारी - मूर्ति धार प्रेम
दिखाई दिया प्रकाशमे
दुःखके हुताशमे।

—मीता।

इसके बाद, और भी कुछ समय बीत गया। उस दिन केतकी अपनी बहनकी लड़कीके अन्नप्राशनमें गई थी। अमित नहीं गया था। आरामकुरसीपर बैठा सामनेकी चौकीपर पैर पसारकर विलियम जेम्सकी पत्रावली पढ रहा था। इतनेमें यतिशकरने आकर लावण्यकी लिखी हुई एक चिट्ठी उसके हाथमें दी। चिट्ठीके एक तरफ शोभनलालके साथ लावण्यके विवाहका सवाद था। ब्याह होगा छै महीने बाद, जेठके महीनेमें, रामगढ-पर्वतके शिखरपर। दूसरी तरफ लिखा था :—

सुनते हो कालकी
यात्रा-ध्वनि नित्य ही?
काल - रथ रहा दौड़
अन्त - हीन व्योममें,
चक्र - पिष्ट अन्धकार
रहा रो छाती फाड़,
जगाता स्पन्दन है
तारोंके प्रकाशमें।
ओ बन्धु, मेरे मीत,
दौड़ते उस कालने
पकड़ लिया मुझे, और
फाँसा जटिल जालमे,
त्वरित ही उठाया, फिर
डाला द्रुत विमानमें,
दुस्साहसी भ्रमणके
मार्गसे वह गया ले
तुमसे अत्यन्त दूर।
हुआ हृदय चूर-चूर।

मुझे लगा ऐसा कुछ
पार कर अनन्त मृत्यु
पहुँची नव-प्रभातमें।
निज-आत्मके प्रकाशमें।
रथका है तीव्र वेग
उड़ाता हवामें 'वह'
मेरा पुराना नाम।
नहीं कोई रोक-थाम।
लौट तो राह नहीं,
देखो अगर दूरसे
पहचान न पाओगे।
हे वन्धु, मेरे मीत,
गाती हूँ विदाका गीत।

किसी दिन कार्य-हीन पूरे अवकाशमें
वसन्तका समीर जव
लायेगा दीर्घ श्वास
अतीतके तीरसे किसी एक रातमें,
झरे हुए फूलोंकी
व्यथासे व्यथित हो उठेगा आकाश-पट
उसी घड़ी उसी क्षण
लेना तव ढूंढ तुम, मेरे कुछ पीछे ही
रह गया पिछड़ा जो तुम्हारे प्राण-प्रान्तमें,

विस्मृत - प्रदोषमें
शायद वह देगा कुछ ज्योतिका प्रकाश आज,
धारण करेगा रूप
नाम-हीन सपनेमे कल्पनाकी मूर्तिका?
फिर भी वह नहीं स्वप्न
वही सत्य मेरा है, वही मेरा मृत्युंजय
वही मेरा प्रेम है।
उसे रख आई हूँ आज मैं तुम्हारे पास
अर्घ्य अपरिवर्तनका।
परिवर्तनके स्रोतमें जाती हूँ बही मैं,
यात्रा है कालकी।
विधिलिपि है भालकी।
हे बन्धु, मेरे मीत,
गाती मै विदाका गीत।

नुकसान तुम्हारा कभो होगा, न हुआ अभी,
मर्त्यकी मिट्टी मेरी,
गढो हो उससे कहीं
अमृतकी मूर्ति शुद्ध,
होने दो आरतो तुम्हारी शुभ-सध्यामें,
खेल वह पूजाका
बाधा नहीं पायेगा मेरे म्लान-स्पर्शसे;

तृपार्त आर्त वेगसे
प्यारके आवेगसे
भ्रष्ट नहीं होगा कभी पत्र-पुष्प एक भी
नैवेद्यके थालमें,
कभी किसी कालमें।
अपने मानस-भोजमें
तुमने सजाया पात्र
वाणीकी प्यास ले,
उसमें न मिलाऊँगी
अपना मैं धूलि-धन,
भीगे मेरे अश्रु-कण।
मेरी याद मेरी बात
तुम्हें देगी प्रेरणा?
उनसे रचोगे आज वचनोंको गूँथ-गूँथ
स्वप्नके आवेशमें माला प्रेम-पद्यकी!
हे बन्धु, मेरे मीत,
गाती मैं विदाका गीत।

करना नहीं शोक तुम मेरे लिए जरा भी,
मेरे लिए काम है, सारा विश्व धाम है।
मेरा पात्र पूर्ण है,
रिक्त नहीं हुआ
शून्यको करूँगी पूर्ण,

मेरे लिए ध्यानमें
कोई यदि बैठा हो उदग्रीव उत्कण्ठासे,
करेगा मुझे वही धन्य,
होगा मेरा वह अनन्य।

लाकर शुक्ल पक्षसे वृन्त रजनिगन्धाका
सजा सकेगा जो थाल प्रेम-अर्घ्यका,
अमावसकी रातमें
बातकी बातमें।
देख सके मुझे जो असीम क्षमाके साथ
भलाई औ' बुराई भूल
उसीको इस पूजामे चाहूँगो देना मैं
अपनो बलोका फूल।

दिया तुम्हें मैंने जो,
निःशेष अधिकार उसका
है तुम्हारे हाथमे।
हे बन्धु, यहाँ है—
तिल-तिलका मेरा दान,
करुण मुहूर्त-क्षण भर-भर गण्डूष आज
मेरी हृदय - अंजलिसे
रहा कर मेरा पान।

ओ मेरे निरुपम, मेरे ऐश्वर्यवान,
तुम्हें जो दिया मैंने, वह था तुम्हारा दान,
तुमने लिया जितना ही, ऋणी किया उतना ही।
हे बन्धु, मेरे मीत,
गाती मैं विदाका गीत।

—वन्या।